सिद्धयोग

संस्थापक :
योग योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

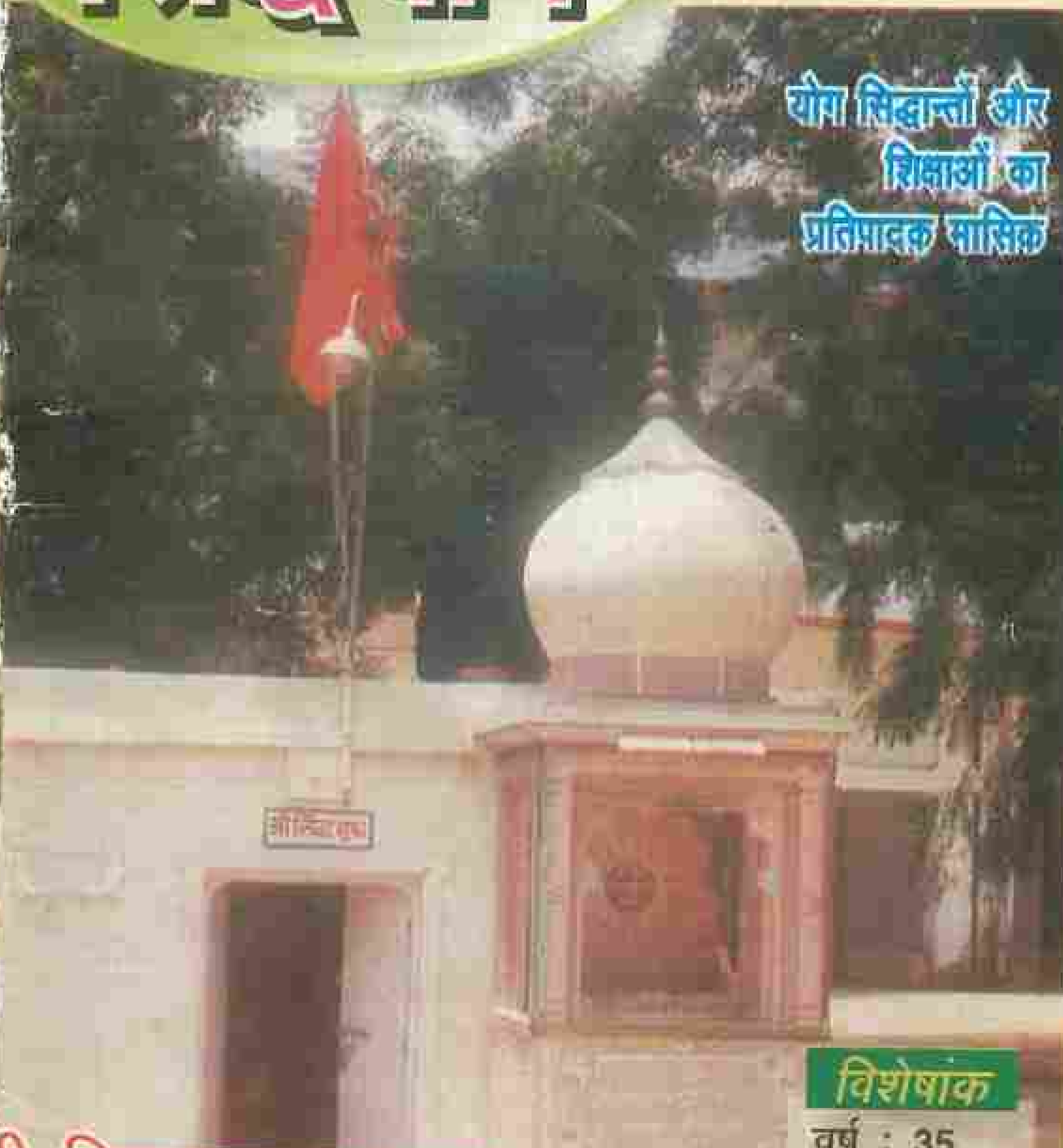

योग सिद्धान्तों और
शिक्षाओं का
प्रतिपादक मासिक

विशेषांक
वर्ष : 35
अंक : 1
अप्रैल, 2002

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
ंवाई (आगरा) - 283 202 (उ.प्र.)

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
डा० विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार
मण्डलों के अध्यक्ष
एवं
गुरु भाई-बहिन

एक प्रति	रु०	8-00
वार्षिक शुल्क	रु०	75-00
द्विवार्षिक	रु०	140-00
आजीवन	रु०	750-00

इस अंक में

- अमृत कण 2
- योग साधक के लिये अनुपालनीय नियम (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 10
- भवभय विनाशक श्री गुरुदेव
  आचार्य चन्द्रहास शर्मा 13
- परमात्मा ही जीवात्मा का सत्यस्वरूप है
  डा० ऋषिराम शर्मा 20
- संकल्प शक्ति व योग
  कु० रुक्मिणी वर्मा 25
- श्रीकृष्ण जन्म सद्शिक्षा के साथ ... 32
- प्रकृति से अपना नाता तोड़कर परमात्मा से अपना नाता जोड़ो
  ब्र० ओमप्रकाश 39
- हम तुम्हें बुलाते हैं !
  डा० कृष्णवीर सिंह तोमर 42
- साधना में श्रद्धा का महत्व
  रजनी शर्मा 43
- चेतावनी
  भूपेन्द्र 'अंकुश' 45
- प्रभुजी ने प्रेतबाधा से मुक्ति दिलाई
  सुदर्शन कुमार अंगारिया 46
- अकाल मृत्यु से कमला देवी की रक्षा
  केशवदेव उपाध्याय 49
- बिनु सतसंग विवेक न होई
  अवनीश भटनागर 54
- मानव की महत्त्वपूर्ण प्रोस्टेट ग्रन्थि उसके रोग तथा निदान
  सत्यनारायण 'बन्धु' 56

श्री रामलाल प्रभवे नमः

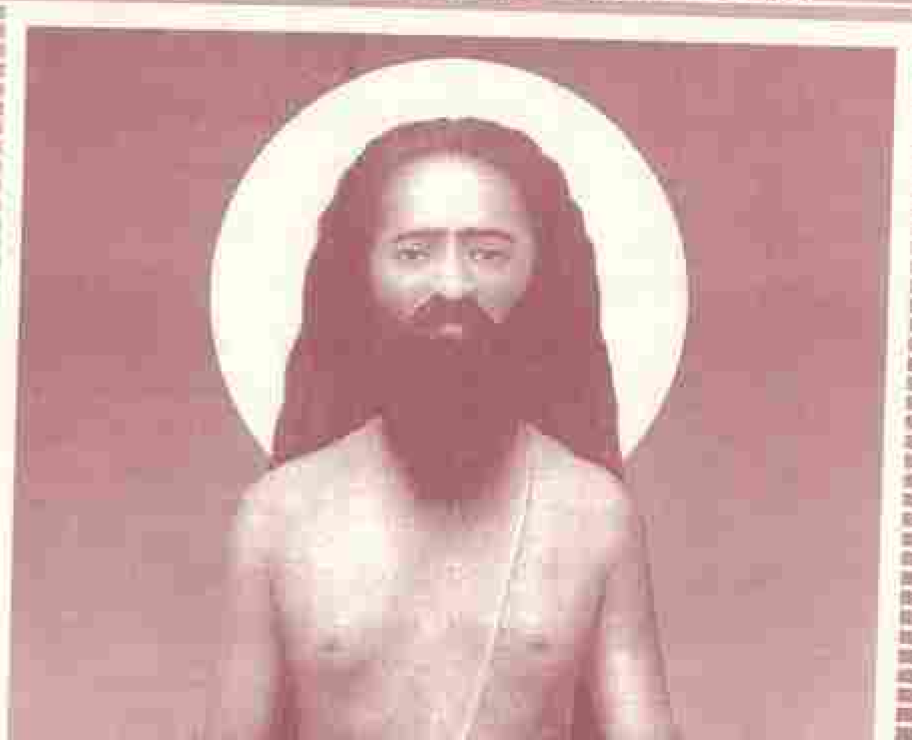

दाता गुरुदेव योगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी महाराज

श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये

रचयिता : द्वारका प्रसाद शर्मा (लखनऊ)

श्रियः समाश्रित्य स्वयं समागताः, पादार्पणादेव प्रभोर्धरायाम्।
कस्मात् कथं नैव स वन्दनीयः, श्रीरामलाल प्रभुमीशमाश्रये।। (१)

मासे नवीने सितपक्ष संयुते, तिथौ नवम्यां वरणीकृतं वपुः।
प्रभोः प्रभावं विशदी करोति वै, श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये।। (२)

अमृतसरः पावन पूत नगरी, अहर्निशं यत्र हरेः स्तुतीनाम्।
ध्वनिः श्रूयते जन्म स्थली प्रभोर्नः, श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये।। (३)

धन्यः पिता तस्य कृतार्थभूता, माताऽपि जठरे नवमासि यस्याः।
शेते स्म कुक्षौ भवतारणः स्वयम्, श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये।। (४)

गण्डात्मजः स जनकोऽपि तस्य, ज्योतिर्विदामग्रणीः स्थानमाधात्।
यो जन्मतो ज्योतिषां पुञ्ज आसीत्, श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये।। (५)

धृतं वपुः योग समुद्गतं तत्, हृतं समस्तं दुरितं स्वकानाम्।
कृतं जनानां परमं च श्रेयः, श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये।। (६)

योगीश्वरः स्यात् भवतात् भवेच्च, योगेश्वरो नाम प्रदीयतां च।
अस्मद् गुरोः सः परमेष्ट देवता, श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये।। (७)

नासीन्मदीयं परमं च पुण्यं, स्वलोचनाभ्यां तत्स्थूल वपुषः।
सुदर्शन् जन्मनि नात्र जातम्, श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये। (८)

तथापि मन्ये सुभगं स्वकीयं, श्रीसद्गुरुणां परमां कृपां च।
यत्सन्निधौ या सन्निधिरस्ति लब्धा, श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये।। (९)

कुतो नास्ति तेषामयनं च नयनं, कणं कणं व्याप्य स्थितः प्रभुर्नः।
क्षणं क्षणं तत्स्मरणं भवेदतः, का वा कृपालोर्न कृपा हि तत्स्यात्।।(१०)

श्री सद्गुरुणां परमां कृपामहं, मन्ये यतो यैः कृपया प्रभूणाम्।
दत्तं सुचित्रं ननु श्री कराभ्यां, श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये।।(११)

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 35
अंक 1

अप्रैल
2002

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूसा विश्ववेदाः।
स्वस्तिनस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।

यजुर्वेद २५/१६

<u>भावार्थ</u>

परम ऐश्वर्यवान एवं यशस्वी परमेश्वर हमारा कल्याण करे। विश्व का पोषण करने वाला सर्वज्ञ परमेश्वर हमारा कल्याण करे। परम तेजवान एवं समस्त दुःखों का नाश करने वाला परमेश्वर हमारा कल्याण करे। सब पदार्थों का स्वामी और ज्ञान का भंडार परमेश्वर हमारा कल्याण करे।

अमृत कण

यावत्स्वस्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति।।

–चाणक्य

जब तक शरीर निरोग व स्वस्थ है और मृत्यु दूर है तब तक अपने आत्म कल्याण का उपाय कर लेना चाहिये। क्योंकि मृत्यु हो जाने पर कोई कुछ नहीं कर सकता।

* * *

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।

श्रीमद्भगवद् गीता ६/६

जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्मा का तो वह स्वयं ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिए वह स्वयं ही शत्रु जैसा व्यवहार करता है।

* * *

शतं वो ऽम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधाशत क्रत्वो यूयमिमं मेऽअगदकृत।।

–यजुर्वेद

मनुष्यों को चाहिये कि वे उचित पथ्य, आहार और नियमों का विधिवत् पालन कर शरीर को रोग रहित रखें अर्थात् स्वास्थ्य की रक्षा करें, क्योंकि स्वस्थ रहे बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

* * *

नैकः सुखी न सर्वत्र विश्वस्तो न च शंकितः।
नोद्यमे विरमेत्क्वपि हेताबीर्ष्यंत्फले न तु।।

–भावप्रकाश ५/२५८

अकेले सुख का भोग न करके, दूसरे को सुख भोग कराते हुए स्वयं सुख भोगना चाहिये। सब के ऊपर विश्वास या संदेह न करके सोच समझकर उचित व्यवहार करना चाहिये। उद्योग करना न छोड़े और दूसरे की उन्नति और सम्पन्नता से ईर्ष्या न करें।

* * *

विशेष लेख

योग साधक के लिये अनुपालनीय नियम

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो ! एक योगी जो अपने को उत्थान की ओर ले जाना चाहता है उसके लिये कुछ आवश्यक नियम भी होते हैं। उन नियमों पर चलकर ही वह अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है। काल चक्र, जग चक्र और युग चक्र को एक साथ घुमाने वाले मेरे तुम्हारे और सब प्राणियों के आत्मा श्री कृष्ण चन्द्र ने गीता में उन नियमों का संकेत दिया है। मैं अपने हर योग प्रचार कार्यक्रम में भगवान के इन वचनों को दोहराया करता हूँ। वे वचन हैं–

"विविक्त सेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमान सः
ध्यान योग परो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।
अहंकारं बलं दर्पं काम क्रोधं परिग्रहम
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।"

अर्थात् भगवान् ने साधक के लिये पहली बात कही है 'विविक्त सेवी' एकान्त में रहे। एकान्त में किसको रहना चाहिये ? एकान्त में उसे रहना चाहिये जिसका ध्यान लगता हो, जिसकी अन्तर्मुखी वृत्ति बन गई हो। सिद्धान्त की बात एक और भी है–

'वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्,
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि य प्रवृत्ते
निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम्।।

अर्थात् जो रागी लोग हैं या विषयी व्यक्ति हैं, उनको वन में भी विषय लग जाता है किन्तु जो निन्दित कर्म में प्रवृत नहीं होता, अपनी पाँचों इन्द्रियों को संयमित रखता है तथा जिसका विषयों के प्रति राग छूट गया है उसके लिये घर ही तपोवन है। इसलिये जो विषयी लो. हैं उनको समाज में ही रहना चाहिये।

'लघ्वाशी' हल्का आहार करना चाहिये ताकि आलस्य निद्रा न सताये। '**सतवाक्कायमान सः**' योगी को अपनी वाणी पर नियन्त्रण रखना चाहिये। कम बोलना चाहिये, सत्य बोलना चाहिये। 'यतकाय' शरीर पर नियन्त्रण हो, प्रत्येक चेष्टा युक्त व संयमित हो '**सतमानसः**' अपने मन पर नियन्त्रण रखे। योगी ध्यान करता-करता ऊँची स्थिति को पा जाता है। उस समय यदि मन पर नियन्त्रण नहीं है तो वह किसी का भला करेगा, किसी का बुरा करेगा। मैं तुम्हें इस से सम्बन्धित एक घटना सुनाता हूँ। अमृतसर में दो पढ़ने वाले लड़के थे। उनमें से एक श्री प्रभु जी के चरणों में

आ गया था। दीक्षा ले ली। योगी ध्यानी बन गया। दूसरा यूँ ही भटकता था, प्रभु जी का निन्दक ही था। उसने उस ध्यानी लड़के की पुस्तकों का ट्रंक चुरा लिया। समझाने पर भी वह अपनी गलती को नहीं मानता था। ध्यानी लड़का जब ध्यान में बैठता था तो वह देखता था कि उसका तीसरा नेत्र खुल गया है और उस लड़के पर क्रोध की दृष्टि जाती है। उसने ध्यान से उठकर के यह बात श्री प्रभु जी को बताई। प्रभु जी ने कहा-तुम आठ दिन तक ध्यान में नहीं बैठना नहीं तो उसका अनिष्ट हो जायेगा। वह आठ दिन तक ध्यान में नहीं बैठा। आठवें दिन उसने प्रभु जी से ध्यान में बैठने के लिये पूछा-प्रभुजी अन्य व्यक्तियों के साथ बातचीत में व्यस्त थे। उन्होंने सरल भाव से कहा-बैठ जाओ। वह लड़का ध्यान में बैठ गया। कई दिनों का ध्यान प्रवाह रुका हुआ था। मन एकाग्र होते ही वह लड़का सामने दिखाई दिया। बड़ी भद्दी हरकतें करता हुआ दिखाई दिया। इससे इसका क्रोध और बढ़ गया फिर इसने देखा कि उसके तीसरे नेत्र से एक चिन्गारी सी निकली और उस लड़के पर पड़ गई। यह दृश्य दिखाई देने के बाद वह लड़का ध्यान से उठ गया और श्री प्रभु जी के पास जाकर कहने लगा प्रभु जी ! आज तो इस प्रकार से हो गया। प्रभु जी कहने लगे "बस, ठीक है, हम तुम्हें शक्ति देते रहें और तुम दुनियाँ का अनिष्ट करते रहो। हमने तुमसे कहा था कि ध्यान में नहीं बैठना, फिर क्यों बैठे" ? उस विचारे ने पूछ तो लिया था। खैर ! हम लोग उस लड़के को देखने के लिये गये। वहाँ जाकर देखा वह लड़का पागल हो गया था उसका दिमाग खराब हो गया। उसने अपनी सारी पुस्तकों को आग लगा दी थी, फिर उसने अपने कपड़े भी जला दिये, अपने कमरे में भी आग लगाने जा रहा था। किन्तु आस पड़ोसियों ने उसे पकड़ लिया। वे लोग उसे पागल खाने ले जा रहे थे। हमने उसे ले जाने नहीं दिया। उसे नेति कराई, नाक से दूध पिलाया सिर को मला, मालिश आदि कराई, वह थोड़ा ठीक हो गया। इसलिये भगवान का आदेश है कि मन पर कन्ट्रोल रखो। मन से भी किसी का अहित चिन्तन न करें। **'ध्यान योग परो नित्यम्'** नित्य ध्यानयोग का अभ्यास करो। मैं तुम्हें रोज-रोज कहता हूँ प्रातः ५ बजे से ७ बजे तक अपने ध्यानाभ्यास में अवश्य बैठा करो। रात्रि को भी सोने से पूर्व कुछ देर बैठ कर मंत्र जाप करना चाहिये। फिर मन्त्र जाप करते-करते ही शवासन में लेट जाना चाहिये। शवासन को श्री प्रभु जी अमृतासन भी कहते थे। शवासन में लेट कर अभ्यास करने के लिए श्री प्रभु जी स्त्रियों को भी कहा करते थे। वैसे तो आमतौर पर रात्रि में बाँये करवट सोना चाहिये। क्योंकि, रात्रि में वात कफ की अधिकता रहती है इसलिये दाँये स्वर-पिंगला को चलाना चाहिये। किन्तु साधना की दृष्टि से शवासन में ही लेट कर अभ्यास करना चाहिये। शवासन में सुषुम्ना चलती है। जब सुषुम्ना चलने लगे- अर्थात् जब दोनों नासिका से श्वास बराबर चल रहा हो तो कुण्डलिनी में प्रबोध होता है, मन की एकाग्रता बनती है। इस प्रकार शवासन से लेटने पर वृत्ति एकाग्र रहेगी, अच्छे अनुभव होंगे, भजन चलता रहेगा। ऐसी स्थिति के लिये ही कहा गया है-

'सोना तो सबसे भला जो कोई जाने सोया
अन्तर लौ लागी रहे सहज ही सुमिरन होया।'

ध्यानाभ्यास से जो अपने पापों का क्षय कर देता है अथवा गुरु देव की अनुकम्पा को प्राप्त कर लेता है, वह व्यक्ति प्राक्तन् घोर कर्म विपाक को शरीर रहते रहते भोग करके अन्तिम काल में शुद्ध हो जाता है उसके प्राण निकलने में कोई कष्ट नहीं होता। मैं अपने ऐसे बहुत से ध्यानी बच्चों का उदाहरण देता ही रहता हूँ। ध्यान के प्रभाव से, तपके प्रभाव से, स्वाध्याय के प्रभाव से उनको अन्तिम समय में कोई कष्ट नहीं हुआ और वे सद्‌गति भाजन बन गये। **अस्तु–वैराग्यम् समुपाश्रितः'** साधक को चाहिये कि वे अपने मन में वैराग्य को धारण करे। संसार की अनित्यता का बार-बार विचार करना चाहिये और किसी वस्तु से, व्यक्ति से राग नहीं करना चाहिये। श्री प्रभु जी कहा करते थे-जो तुम्हारा मन ले ले, वही तुम्हारा वैरी है। वह तुम्हारे मन की शक्ति को खींचता रहेगा और जैसा वह है वैसे ही तुम्हें बना देगा। इसलिये साधक को सावधान रहना चाहिये। किसी में आसक्ति नहीं बढ़ानी चाहिये।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्ः साधक अहंकार को छोड़ दे। मनुष्य में कई प्रकार का अहंकार होता है जैसे कर्म करने का अहंकार, बल का अहंकार, धन का अहंकार विद्या का अहंकार आदि-आदि सब अनिष्ट अहंकार के कारण होता है। इसलिये बल-किसी भी प्रकार का बल हो, उसका दुरुपयोग न करें। **दर्पं–** मिथ्याभिमान न करे। **कामम्**–अनेक प्रकार की कामनायें तृष्णायें होती हैं, उनका त्याग करे। **क्रोधम्**–किसी पर क्रोध न करें। क्रोध करने से आन्तरिक शक्ति भी क्षीण होती है और शारीरिक शक्ति भी क्षीण होती है। **परिग्रहम्**–आवश्यकता से अधिक वस्तु का संग्रह न करे। साधक जीवनोपयोगी कम से कम वस्तु अपने पास रखे। इसलिये परिग्रह न करे। **निर्ममः**–अर्थात् ममता रहित बने। किसी वस्तु या व्यक्ति में आसक्ति न रखे। यदि साधक भगवान के उपर्युक्त आदेश को मानकर चलता है तो वह परम शांति को पा जाता है और ब्रह्मत्व को पा जाता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

भगवान पतंजलि देव ने चित्त को प्रसन्न रखने का उपाय योग दर्शन में बताया है। यदि ये चार बातें साधक अपने अन्दर कायम कर लें, तो उसकी समाधि में विघ्न नहीं पड़ता चित्त प्रफुल्लित रहता है। वे चार साधना हैं–

'मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्'

इसका अर्थ यह है साधक सुखी व्यक्ति से मैत्री की भावना, सुहृदता का व्यवहार रखे। दुःखी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव रखे। दया दुखियों पर करें जो पुण्यात्मा हैं साधु हैं, उन को देखकर मन में आनन्द का अनुभव करें और जो दुराचारी या पापी व्यक्ति हैं, उनके प्रति उदासीन भाव रखें। इस प्रकार के भाव लाने से योगी के मन में कोई विक्षेप नहीं आता है, उसका चित्त प्रसन्न रहता है। मैं कभी-कभी तुम्हें इस बात का संकेत कर दिया करता हूँ कि तुम्हें अपनी दिनचर्या किस प्रकार की रखनी चाहिये। देखो ! साधक को 'युक्ताहार विचार' का सिद्धान्त हमेशा अपने सामने रखना चाहिये। रात्रि को मंत्र जाप करते-करते दस बजे तक सो जाना चाहिये। सुबह ठीक चार बजे उठ जाना चाहिये। उठने के बाद शौच जाना चाहिये। यदि कोष्टबद्धता रहती है, तो नियमित गर्म पानी में

नीबू व नमक डाल कर पीना चाहिये। शौच से निवृत्त होकर दातूनादि से दाँत व जीभ ठीक प्रकार से साफ करने चाहिये। नहाने के लिये ठण्डे पानी का प्रयोग उत्तम रहता है। इससे रोमकूप खुल जाते हैं तत्पश्चात खद्दर के खुरदरे अंगोछे से शरीर को रगड़-रगड़ कर पोंछना चाहिये। इसके बाद थोड़ा जीवन तत्व साधन अवश्य करना चाहिये। पाँच बजे तक इन कार्यों से निवृत्त होकर आनन्द कन्द श्री प्रभु जी की आरती करें। उसके पश्चात् मंत्र जाप व ध्यान के लिये बैठ जायें। मंत्र को श्वास-प्रश्वास से जपना चाहिये। यदि इसमें नींद आने लगे तो जीभ से बोल-बोल कर भी जप कर सकते हो। मेरुदण्ड को सीधा रखो ब्रह्मचर्य पूर्वक छः महीने तक शरीर सीधा रख कर अभ्यास करोगे तो ध्यान लगेगा ही लगेगा। पहले हमारा नियम था जो छः महीने तक तीन घण्टे बैठ लेता था, उसे ही दीक्षा देते थे और छः महीने तक जो छः छः घण्टे बैठता था, तब शक्तिपात करते थे। अब भीड़भाड़ के कारण यह नियम चल नहीं पाता है। जीवन तत्व एवं योगासन करने से धातु सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है। जिसमें साधक ओज तेज से भर जाता है। इसलिये नियमित योगासन अथवा जीवन तत्व आवश्यक है। साधना के विषय में पतंजलि देव का सूत्र याद रखना चाहिये-

'स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़ भूमिः।

अर्थात् साधना को लम्बे समय तक करते रहना चाहिये। साल छः महीने में ही उकताना नहीं चाहिये। **नैरन्तर्य**- निरन्तर लगाकर अर्थात् प्रतिदिन करे। **'सत्कारासेवितो'** सत्कार पूर्वक, आदर पूर्वक करे। यही साधन तुम्हें दुःखों से छुड़ा देगा, यही मोक्ष प्रदान करेगा, ऐसी भावना रखते हुये साधना करनी चाहिये तब साधना दृढ़ बनती है। एक और भी बात है, वह है-**तीव्र संवेगानामासन्नः** जो गाढ़ी लगन के साथ साधना करते हैं वह अपने लक्ष्य को जल्दी पाते हैं और जो साधना में शिथिलता बर्तते हैं, उन्हें देर में सफलता मिलती है। स्वल्पाहार करोगे, तप करोगे अर्थात् सर्दी-गर्मी, भूख प्यास सहन करते हुये साधना करोगे, तो श्री प्रभु जी की कृपा से ध्यान लगने लगेगा। मैंने तुम्हें बताया था कि ध्यानियों के प्रारब्ध बदल जाया करते हैं। यदि गुरुदेव की कृपा से ध्यान लगता है तो ध्यानियों का भी रजिस्ट्रेशन हो जाता है। अर्थात् मनुष्य जन्म मिलेगा अथवा स्वर्गादि लोकों में जायेगा। निम्न योनियों में नहीं जा सकता। साधकों को एक डायरी रखनी चाहिये। प्रातः संकल्प करो। आज दिन भर में मैं किसी को दुःख नहीं दूँगा। अपनी चेष्टाओं और मन पर नियन्त्रण रखूँगा आदि। फिर शाम को सोने से पहले अपनी पूरी दिनचर्या को देखो, आज कहीं गलत काम तो नहीं हो गया, साधना में कितना मन लगा इत्यादि बातों पर विचार कर अपने दुर्गुणों को दूर करने का प्रयास करो।

मेरे बच्चे अधिकांश घर-गृहस्थी वाले हैं। मैं तो अपने हर गृहस्थी बच्चे को एक बात जोर देकर कहा करता हूँ कि पति-पत्नी में परस्पर प्रेम रहना चाहिये। दोनों को एक प्राण होकर रहना चाहिये, इससे साधना में किसी प्रकार का विघ्न नहीं आता। मनु महाराज का वचन है-

संतुष्टो भार्यया भर्ता, भार्या भर्ता तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं सर्वम् तद् रोचते गृहम्।।

अर्थात् जिस परिवार में पत्नी से पति खुश रहता है और पति से पत्नी प्रसन्न रहती है, तो वहाँ सब प्रकार से सुख सम्पत्ति का वास रहता है, लक्ष्मी बरसती है और किसी प्रकार की बीमारी नहीं आती तथा उत्तम संतान की प्राप्ति होती है। किन्तु, घर में यदि रोज कलह रहता है, द्वन्द्व मचता है तो निश्चित जान लो कि दरिद्रता आयेगी, बीमारियाँ बढ़ेंगी और सन्तान भी अच्छी नहीं होगी। इसलिये हर गृहस्थी साधक को परस्पर प्रेम से रहना चाहिये।

योग साधकों को ध्यानाभ्यास के साथ-साथ यम नियमादि का भी पूरा-पूरा पालन करना चाहिये। उन्हें यह भी नहीं सोचना चाहिये। कि पहले हम यम-नियम का ही पालन कर लेंगे, फिर ध्यानाभ्यास में बैठेंगे। यम नियमादि जो योग के पाँच बहिरंग साधन हैं, उनमें आँख बन्द करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनमें अपने व्यवहार में यम-नियमादि को अपनाना पड़ता है। मैंने तुम्हें कई बार यह बताया है कि जो यम-नियमों का पालन नहीं करता और जिसने गुरुदेव के थपेड़े खाकर साधना नहीं की, उसका पतन हो जाया करता है। योग के एक अंग का ही यदि ठीक प्रकार से पालन हो जाये, तो वह एक अंग ही हमें समाधि द्वार तक पहुँचा देता है। यम नियमों में सर्वप्रथम स्थान अहिंसा का है। योगी को **'सर्वभूत हितेरता:'** की भावना से युक्त होकर मन, वचन एवं कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिये। वस्तुत: अहिंसा की पूरी-पूरी प्रतिष्ठा तो योगी को समाधि मिल जाने पर ही होती है। जब तक योगी **'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि'** की स्थिति में नहीं पहुँच जाता अथवा **'शुनि चैव श्वपाके च पण्डित: समदर्शिन:'** के सिद्धान्तानुसार सब प्राणियों में आत्मदर्शन नहीं कर लेता, तब तक कोई भी पूर्ण रूप में अहिंसक नहीं हो पाता।

अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाने पर, हिंसक प्राणियों में भी अहिंसा भाव का उदय हो जाता है। मुझे एक घटना याद आई है। एक बार आनन्दकन्द श्री प्रभुजी अपने कुछ शिष्यों के साथ ऋषिकेश से आगे ब्रह्मपुरी के जंगल में घूमने गये। श्री मुल्खराज जी महाराज भी उनके साथ थे, उन दिनों उनकी तुरीय स्थिति बनी हुई थी। घूमते-घूमते अचानक एक बाघ निकल आया। सब लोग डरने लगे। श्री प्रभु जी ने अभयदान दिया। सभी शांत खड़े रहे। ज्यों ही वह बाघ श्री मुल्खराज जी के समीप आया, वह पूँछ हिलाने लगा।

श्री मुल्खराज जी ने उसके सिर पर हाथ फेर कर प्यार किया। थोड़ी देर में वह अपने आप दूर चला गया। इसी का नाम है **'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्याग:'**।

अहिंसा के बाद सत्य दूसरा यम है। इस व्रत का भी पालन करना बहुत आवश्यक है जो व्यक्ति पूर्णतया सत्यवादी हो जाता है, उसकी वाणी में ताकत आ जाती है। योगदर्शन में सत्य व्रत पालने करने का फल बताया है-**"सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्"** सत्य प्रतिष्ठा से योगी की वाणी क्रियाफलवती हो जाती है। **'अमोघाऽस्यवाक्भवति'** की स्थिति आ जाती है। वह अमोघ वाणी वाला बन जाता है और धीरे-धीरे वह ऋतम्भरा प्रज्ञा तक भी पहुँच जाता है। मैं तुम्हें अपने

एक गुरु भाई का उदाहरण देता हूँ। (वह घटना गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की अपनी आप बीती घटना है। गुरुदेव जी ऐसे दृष्टांत समझाते हुये अपनी ही घटनायें बताते थे किन्तु अपना नाम नहीं आने देते थे) वह गुरु भाई अपने मुख से जो कह दिया करते थे, वह पूर्णतया सत्य होता था। सत्य बोलने का यह पवित्र व्रत उसे बाल्यकाल से ही, उनके पिता के द्वारा दृढ़ बना दिया गया था। एक बार वे योग प्रचार करते हुये रोहतक जिला में किसी गाँव में गये। वहाँ पर एक ब्राह्मण बालक को भूतोन्माद की बीमारी लगी हुई थी। उसका इलाज उन्होंने अपनी मानसिक शक्ति से किया और उसे आराम हो गया। इसके फलस्वरूप इस गाँव में उनके सत्संग का काफी प्रचार हो गया। उस गाँव में वह महात्मा दस पन्द्रह दिन तक रहे। इसके बाद उनका कार्यक्रम किसी दूसरे स्थान में निश्चित हो चुका था।

निर्धारित दिन में उन्हें दिन की गाड़ी पकड़नी थी। स्टेशन वहाँ से पाँच-छः किलोमीटर दूर था। महात्मा जी गाड़ी पकड़ने के लिये चलने वाले थे कि अचानक वर्षा शुरू हो गई ओले पड़ने लगे। सत्संगियों ने कहा–महाराज! ऐसे में जाना तो अत्यन्त कठिन है। आप आज का कार्यक्रम स्थगित कर दें। माघ का महीना था। महात्मा जी सत्यवादी थे। अतः अपने वचन की रक्षा के लिये ऐसी स्थिति में भी चलने को तैयार हो गये। सवारी भी कोई जा नहीं सकती थी। महात्मा जी ने अपने सत्संगियों से कहा कि तुम हमारा बिस्तर और शेष सामान बाद में पहुँचा देना। अपने वचन का पालन करने के लिये वर्षा में ही एक छाता लेकर वे चल पड़े। सभी गाँव वालों को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि महात्मा जी आधा फर्लांग भी नहीं गये थे कि वर्षा रुक गई। बादल हट गये आकाश स्वच्छ हो गया। सत्संगी भी उनके पीछे सामान लेकर चल पड़े। उनके सत्य संकल्प के कारण वे ठीक समय पर पहुँचे और गाड़ी पकड़ ली। यह महात्मा जी की सत्य संकल्पता का ही परिणाम था। सत्य वादन के एक साल के अनवरत अभ्यास करने से योगी को वाक्‌सिद्धि स्वतः प्राप्त हो जाती है। किन्तु इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि कटु सत्य भी न बोले। कटु सत्य में अनेक प्रकार की हानियाँ निहित रहा करती है। सत्यवादी व्यक्ति यदि साथ में ध्यान योगी भी है तो उसके लिये बुद्धि का आलोक खुल जाता है, उसे स्फुट प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है। साधक के लिये ब्रह्मचर्य का व्रत का पालन तो आवश्यक है ही–

'ब्रह्मचारी विनयेषु शक्तिमाधातुम् समर्थों भवति।'

ब्रह्मचारी अपने शिष्यों पर शक्तिपात कर सकता है अणिमादि सिद्धियाँ ब्रह्मचारी को सहज ही मिल जाती हैं। इसलिये साधक को अपनी इन्द्रियों पर निग्रह रखना चाहिये, यह बहुत बड़ा तप है। साधक को अस्तेय व्रत का भी पालन करना चाहिये। 'अस्तेय' का अर्थ है मन से चोरी का भाव निकाल देना। इस भाव की प्रतिष्ठा हो जाने पर **'अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम'** अर्थात् योगी के सम्मुख सब रत्न अपने आप उपस्थित हो जाया करते हैं। अपरिग्रह का पालन भी जरूरी है। अपनी धन संपत्ति में आसक्ति का न रखना अपरिग्रह कहलाता है। अपरिग्रह से संतोष मिलता

है। इस व्रत के स्थैर्य से **'जन्मकथान्तसंबोध:'** आगे पीछे जन्म की बातें याद रहने वाली हैं। जिला मैनपुरी में हमारा एक शिष्य रघुनन्दन लाल शास्त्री है। उनकी एक लड़की है। वह पिछले जन्म में रेल के नीचे कट कर मर गई थी। पिछले जन्म में मेहतर कुल में उसका जन्म हुआ था। उसके पति और घर वाले उसे बहुत मारते पीटते थे। इसलिये एक दिन उस लड़की ने आत्म हत्या कर ली। इस लड़की को इस जन्म में भी पूर्व जन्म की सारी बातें याद हैं। लोक में भी ऐसी बातें कभी-कभी घट जाती हैं। किन्तु यह योग की बात नहीं है। इस प्रकार से ये पाँच यम हैं। इसमें से यदि एक की भी साधना हो गई तो साधक मुक्ति द्वार तक पहुँच सकता है। यमों के साथ-साथ नियमों का भी पालन करना चाहिये। पहला नियम शौच है। यह दो प्रकार का होता है एक बाहर का दूसरा भीतर का। शरीर वस्त्र आदि को स्वच्छ व शुद्ध रखना बाह्य शौच है। शुभ भावों से अन्त:करण को पवित्र रखना भीतरी शुद्धि है। अन्त:करण शुद्धि के बिना, पर दर्शन नहीं हो सकता। संतोष का भी अपना महत्व है। इसी प्रकार से तप और स्वाध्याय भी क्रिया योग के अन्तर्गत आते हैं– ये दोनों अन्त:करण को पवित्र बनाने वाले उत्तम साधन हैं। **'तपसा चीयते ब्रह्म'** तप के द्वारा ही ब्रह्म दर्शन होता है। स्वाध्याय से इष्ट देव सिद्धि एवं ऋषियों के दर्शन संभव होते हैं। इस प्रकार से तप व स्वाध्याय को बढ़ाता हुआ साधक ईश्वर प्रणिधान की ओर निकल जाता है। सतोगुण के विकास होने पर ईश्वर प्रणिधान् अर्थात् आत्म समर्पण होता है।

साधक को अपना आचार विचार ठीक रखना चाहिये। **'आचारहीनं न पुनन्तिवेदा:'** अर्थात् आचार हीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। आहार विहार योगी का युक्त होना चाहिये।

गीता में भगवान का आदेश है–

'युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा।।

अधिक खाने अथवा बिल्कुल न खाने से योग सिद्ध नहीं होता। कर्मों के प्रति भी चेष्टा युक्त होना चाहिये। अनावश्यक चपलता ठीक नहीं होती। शरीर को चंचल रखने से मन का भी चंचल रहने का स्वभाव बढ़ जाता है। समय पर सोना, समय पर जागना उचित है। इस प्रकार से अपनी नियमानुवर्तिता का पालन करने से योग समस्त दु:खों का हरण करने वाला बन जाता है।

साधक को अपने आप को हर समय व्यस्त (निरत) रखना चाहिये। चलते फिरते उठते-बैठते गुरु मंत्र का जाप करते रहना चाहिये। जो ऐसा करेंगे, श्री प्रभु जी उनकी अवश्य सहायता करेंगे।

बार-बार आशीर्वाद।

***

आनन्दकन्द प्रभु श्री रामलालजी महाराज का पावन—जन्ममहोत्सव

आचार्य दासलाल शर्मा

अखिल लोक पावन आनन्दकन्द परम गुरुदेव महाप्रभु श्रीरामलाल जी महाराज इस कलिकाल में संसार के समस्त प्राणियों के लिये अभयदाता, ज्ञानदाता एवं योग के परम लक्ष्य को देने वाले सत्य स्वरूप ईश्वर ही हैं। जीवों को घोर यातनाओं में छटपटाते देख उन्हें शान्ति एवं योग मार्ग को दिखाने के लिये वे समय-समय पर योगदेह धारण करके सगुण रूप में प्रकट होते रहते हैं। अपनी विभूतियों का प्रकाशन कर जीवों को अपनी ओर खींच लिया करते हैं। शक्तिमान का ही संसार उपासना, अर्चना किया करता है। भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी ने गीता में अपनी शक्ति और विभूतियों का वर्णन व प्रकाशन किया और कहा जो कोई मेरी विभूतियों को एवं योग को तत्व से जान लेता है वह मुझ से दृढ़ता से जुड़ जाता है और उसका अडिग व अविकम्प योग बन जाता है। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का इस संसार को बहुत बड़ी देन है। वे कल्पान्त जीवी महापुरुष हैं इस कारण से वे अनेक रूपों में, अनेक शरीरों में जगत कल्याण के लिये विचरण करते रहते हैं। उन्हें संसार में आने व रहने की कोई बाध्यता नहीं होती। जन्म मृत्यु जरा व्याधि के प्रभाव से अस्पृष्य रहने वाले सिद्धेश्वर जगत में विद्यमान रहकर जगत का कल्याण करते रहते हैं। वे अकारण ही दयालु होते हैं। जीवों पर कृपा करना ही उनका स्वभाव होता है। ऐसे सर्वसमर्थ सिद्धों के जीवन एवं लीलाओं के विषय में जानना मनुष्य के वश की बात नहीं होती क्योंकि मनुष्य अल्पज्ञ है। भौतिक जगत के उस पार की वस्तुओं का उसे ज्ञान ही नहीं होता है।

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने बीसवीं शताब्दी में प्रकट होकर जीवों का बहुत प्रकार से कल्याण किया है। आज संसार में लोग उनके नाम और रूप से परिचित होकर योग तत्व को समझकर उस विराट से मिलकर एक होने के लिए साधनारत है। योग विद्या की ही यह विशेषता है कि जीव को अन्ततोगत्वा परमपद की प्राप्ति करा देते हैं, जब तक मनुष्य योग मार्ग की महिमा एवं शक्ति को नहीं समझता तब तक वह भ्रमित ही रहा करता है। और वह तत्वज्ञान से कोसों दूर होता है। मनुष्य का परम कर्तव्य यही है कि वह योगी गुरु की शरण में जाकर योग अभ्यास करें और आत्म कल्याण की ओर बढ़ जायें। धार्मिक ग्रन्थों में ये आता है कि कलिकाल में जीव के उद्धार के लिए जप, तप, दान एवं तीर्थ से बढ़कर मुक्ति का अन्य कोई सरल मार्ग नहीं है। किन्तु महाप्रभु जी ने अनेक स्थलों पर सद्गुरु रूप में प्रगट रहकर योग के उस अमूल्य निधि का उद्घाटन किया है। जिसका वर्णन स्वयं भगवान ने अपनी गीता में किया है। भारत भूमि पर महाप्रभु जी एक ही समय में अनेक स्थानों पर अनेक शरीरों से रहकर योग विद्या का प्रसार करते रहे हैं। वे परम योगेश्वर है। उपनिषदों में ऐसे योगियों के विषय में उल्लेख मिलता है-

एक धा भवति द्वैधा अनेकधा पुनः।
योगेश्वराः शरीराणि करोति विकरोति च।।

ऐसे योगेश्वर अनेक शरीरों को धारण कर अपने कार्य को पूरा कर पुनः उन शरीरों का श्रृंगार कर लेते हैं। प्रकृति पुरुष के ऊपर संचालन करने वाले ऐसे महापुरुष **सदैव मुक्ताः सदैव ईश्वराः** के रूप में होते हुए भी जीवों के उद्धार की करुणामयी भावना से शरीरों को ग्रहण करते व छोड़ते रहते हैं। ऐसे योगी प्रज्ञा प्रासाद पर आरूढ़ योगेश्वर संसार को इस प्रकार से देखते हैं, जैसे पर्वत शिखर पर बैठा हुआ व्यक्ति भूमि वालों को देखा करता है। इसी का उदाहरण बनकर श्रीप्रभु जी इस पृथ्वी मण्डल पर आये और योग का पवित्र कार्य उन्होंने आरम्भ कर दिया। उन्होंने शक्तिपात दीक्षा की परम्परा को पुर्नजीवित किया। शक्तिपात दीक्षा प्राप्ति का हर व्यक्ति अधिकारी नहीं हो सकता। हमारे योग शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है। वह है **सिद्धयोग** और **साधनयोग**, साधनयोग में साधक अभ्यास करता-करता धीरे-धीरे लक्ष्य की ओर बढ़ता है। इसे ही योग दर्शन में क्रिया योग के नाम से कहा गया है। दूसरा है-सिद्धयोग इसमें सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है। वह अल्प समय में ही उतनी ऊँचाई पर पहुँच जाता है, जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सिद्ध योगीराज ही हुआ करते हैं। वही लोग शक्तिपात किया करते हैं। अपने अधिकारी शिष्यों को जन सम्पर्क से दूर हिमालय की कंदराओं में रखकर योग की गूढ़ साधनाओं को कराके उन्हें तत्व विजयी बनाकर सैकड़ों वर्षों तक आत्म दर्शन व स्वरूप स्थिति के लिए लगाये रखते हैं। महाप्रभुजी के अनेकों शिष्य हिमालय में आज भी साधनालीन हैं। श्री प्रभु जी अपने संकल्पमात्र से मनुष्य को योगी व सिद्ध बना देने वाले हैं। श्री गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने मुखारबिन्द से कहा करते थे 'कि श्री प्रभुजी की भावना से किसी और का भी चिन्तन करेगा वह मूर्ति भी सिद्ध हो जायेगी।' अर्थात् यदि किसी व्यक्ति या मूर्ति का श्री प्रभु जी की भावना करके कोई चिन्तन करेगा तो श्रीप्रभु जी उस व्यक्ति के रूप में प्रकट रहकर साधकों के कार्य कर दिया करते हैं।

समाज में कई लोगों ने 'महाप्रभु' बनकर अपने को पुजवाने की कुचेष्टायें भी की। कईयों को तो स्वयं गुरुदेव ने ताड़नायें दी थीं। योग साधना के द्वारा मन में मन, चित्त में चित्त मिलाकर तादात्म्य स्थापित कर महाप्रभु से भावित होकर कार्य करना योग सिद्धान्त के अन्तर्गत है। कभी-कभी प्रभु जी के संस्कारी बच्चों की रक्षा के लिये भक्तों पर प्रभुजी का तेजावेश भी हुआ करता है किन्तु इस प्रकार का आवेश तब होता है जब कोई भक्त किसी दुरात्मा से ग्रसित हो जाया करता है। जब दुरात्मा का प्रभाव नष्ट हो जाता है तो वह भक्त सामान्य हो जाता है। श्री प्रभु जी के आवेश के आने पर भक्त के अन्दर भी दिव्यता आ जाती है। और कई अलौकिक घटनायें भी घट जाया करती हैं। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी अनेकों शरीर धारण करते तथा त्यागते रहते हैं इसी काम में प्रभु रामलाल जी के रूप में आज से ११४ वर्ष पूर्व गुरुओं की नगरी अमृतसर शहर में सुविख्यात ज्योतिर्विद स्वनामधन्य पं. गण्डाराम जी के घर में चैत्र शुक्ला नवमी के पावन दिन

आपका आर्विभाव हुआ था। जन्म लेने के बाद शैशव में ही आप के अनेकानेक अलौकिक चरित्र देखने को मिलते हैं। १५ वर्ष की अल्प अवस्था में घर त्याग दिया, तत्पश्चात कुरुक्षेत्र, हरिद्वार आदि तीर्थ स्थलों में विचरण करते हुए सम्पर्क में आने वाले लोगों का कल्याण करते रहे। २२-२३ वर्ष की अवस्था में श्री वृन्दावनधाम तथा बृज के अन्य क्षेत्रों में विचरण करते हुए सन् १९११ ई. के लगभग आपका आगमन संवाई गाँव में हुआ वहाँ एकान्त जंगल में भक्तों के आग्रह पर आप निवास करने लगे। उसी समय भक्तजनों ने उनके लिए एक गुफा का निर्माण किया और प्रार्थना की कि प्रभुजी आप इस गुफा में ही रहें, अन्यत्र जाने का विचार न करें। भक्तों की इच्छा भगवान हमेशा ही पूरी करते हैं श्रीप्रभुजी ने उनके आग्रह और संस्कार को देखकर २-३ वर्ष तक निवास किया और अपने चरण रज से इस को परम पावन बनाया, यहाँ पर रहते हुए लोगों पर अलौकिक कृपाएँ की जिनकी चर्चा आज भी वहाँ के जन-जन में चर्चित है। किन्तु स्वच्छन्द योगी को कोई अधिक समय तक के लिए बांधकर नहीं रख सकता। इसी के फलस्वरूप श्री प्रभुजी अपने गुरुदेव सदाशिव से भेंट करने के लिए यहाँ से आकाश मार्ग से हिमालय की ओर चले गये। उनसे सेवित इस भूमि पर कालान्तर में हमारे गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने इसे परम तीर्थ मानकर इस स्थान को सिद्ध गुफा के रूप में विश्व प्रसिद्ध बना दिया, और यह स्थान योग सिद्ध पीठ के रूप में सारे विश्व में प्रसिद्ध है। महाप्रभु जी के शिष्य श्री प्रभुजी के अनुयायी एवं शिष्य आपको शिव स्वरूप मानकर ही आपकी पूजा अर्चना कर अपने को धन्य मानते हैं। गुरु गीता में सद्‌गुरु के विषय में एक श्लोक आया है-

'सच्चिदानन्द रूपाय व्यापिने परमात्मने,
नमः श्री गुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थिभेदिने

अर्थात् सच्चिदानन्द रूप व्यापक परमात्मा गुरु नाथ को मैं प्रणाम करता हूँ क्योंकि वे ही अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं। गुरु गीता का यह श्लोक श्री प्रभुजी के लिए उदाहरण स्वरूप है। इस श्लोक में गुरुदेव को व्यापक सच्चिदानन्द परमात्म-स्वरूप एवं अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले परम पुरुष के रूप में माना है। आज प्रभुजी की सिद्धयोग परम्परा में उनके शिष्यों ने लाखों साधकों को योग मार्ग का परम कल्याणकारी मार्ग देकर उन्हें योगारूरुक्षु तथा योगारूढ़ बना दिया है। इनके पावन प्राकट्य दिवस पर उन्हें सभी अनुयायिओं का कोटि-कोटि नमन !

***

जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियता आदि बढ़ती हो और अविद्या आदि दोष दूर होते हों, उसको शिक्षा कहते हैं। मैं विद्वानों को 'देव' अविद्वानों को 'असुर' पापियों को 'राक्षस' और अनाचारियों को 'पिशाच' मानता हूँ। —महर्षि दयानन्द सरस्वती

भवभय विनाशक श्री गुरुदेव

प्रो० आचार्य चन्द्रहास शर्मा (दिल्ली)

अविद्या का परिणाम भय है। अज्ञान का फल भी भय है। अपने कुछ होने का अभिमान अन्त में भयभीत करता है। किसी वस्तु या व्यक्ति में आसक्ति या राग की परिणति भी अन्त में 'भय' के रूप में होती है। कहीं कुछ हो न जाय ? कल को वह प्यारी वस्तु हाथ से छिन न जाय, इसी चिन्ता में उसके वर्तमान सुख से भी मनुष्य वंचित रहता है। जिससे द्वेष है उससे तो सदा भय बना रहता है कि हमारी हानि न कर दें। हमारे ऊपर वार न कर दें। कहीं हमसे आगे वह न निकल जाये। अभिनिवेश अर्थात् मृत्यु का भय तो अबोध शिशु से लेकर शूरवीर और ज्ञानी-अज्ञानी सब को आक्रान्त करता रहता है। योगदर्शन में महर्षि पतंजलि कहते हैं कि **'स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः** २/९ अर्थात् मूर्खों और विद्वानों में समानरूप से अपनी देह बुद्धि रहने पर मृत्यु का भय होता है। मृत्यु की भाँति अन्य शरीर के सम्बन्ध से प्रिय लगने वाली चीजों और सम्बन्धियों के वियोग का भय सदा लगा रहता है। मृत्यु के भय की भांति जन्म का भय भी प्रत्येक प्राणी के अचेतन मन में समाया रहता है। जन्म के समय का कष्ट भी दुःख दायी है। जिस प्रकार गन्ना कोल्हू में पेरा जाता है उसी प्रकार माता के शरीर से प्राण घुटते हुए प्राणी बाहर निकलता है। जन्म, मृत्यु तथा शरीर के सम्बन्ध से होने वाले प्रिय जनों के वियोग का दुःख अनेक जन्मों में यह अभागा जीव भोगता आया है। इसीलिए वास्तविक भय उपस्थित न भी हो तो भी उसकी कल्पना मात्र से वह भयाक्रान्त हो उठता है। भगवान पतंजलि ने विद्वानों को भी इस प्रकार का भय होता है, ऐसा कहकर उन लोगों को सावधान किया है जो शब्द पण्डित्य के बल पर लम्बी-चौड़ी डींग मारते रहते हैं। शब्द का ज्ञान रखने वाला विद्वान कहलाता है। कोरा पण्डित अज्ञानियों से भी अधिक भयग्रस्त होता है। क्योंकि वह थोथे ज्ञान के अभिमान के बोझ से दबा हुआ रहता है। इसकी दृष्टि ज्ञान को जीवन में पचाकर आत्मा के अव्यय और निर्भय राज्य में पदार्पण करने की नहीं हो पाती। वह कोरी बातों का जमा-खर्च करने में लगा रहता है। ज्ञानी से आगे निकलकर उस शाश्वत अमरत्व देने वाले योग ज्ञान (ब्रह्मविद्या) को आत्मसात् कर विज्ञानी बनने पर मृत्यु भय नहीं होता।

भयभीत व्यक्ति सदा चिन्तातुर होता है। चिन्ता चिता से भी बढ़कर होती है। 'चिता दहति निर्जीव को, चिन्ता जीव समेत। चिन्ताग्रस्त व्यक्ति का मन सदा दुःखी रहता है। जो कुछ वर्तमान में प्राप्त सुख है वह भी चिन्ताग्रस्त व्यक्ति को सुख नहीं दे पाता। शंका, भय और हतोत्साह हमारे मन को घेर लेते हैं, उसको दूर-करने के लिए न जाने क्या-क्या उपाय करता है। हमारे देश में बरसाती मेढ़कों की तरह जगह-जगह नेता घूमते मिल जायेंगे। उनकी सुरक्षा के लिए एक, दो, चार उनके भय की मात्रा के अनुसार उनके साथ शस्त्र सज्जित सुरक्षा गार्ड रहते हैं। कुछ छुटभैये इसको अपना स्टेटस सिम्बल समझकर इठलाते रहते हैं। उन्हें कहीं से भी भय नहीं है फिर भी उन्होंने अपने अहं में भय को जबर्दस्ती निमंत्रित कर लिया है। जो निरन्तर स्वयं भयभीत है वह क्या तो देश का भला करेगा और क्या अपना ? संसार में राजा से रंक तक, ज्ञानी से अज्ञानी तक सभी भयभीत हैं। केवल

योगी ही निर्भय हो पाता है। क्योंकि वह भय को भी भयभीत करने वाले काल के भी महाकाल परमसत्ता से अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है। यह सम्बन्ध श्री सद्‌गुरु में प्रबल श्रद्धा और साधना परायण जीवन पद्धति से बन जाता है। यदि सद्‌गुरु में अनन्य निष्ठा हो जाय तो स्वल्प साधन के द्वारा भी इसी जन्म में महानभय से त्राण मिल सकता है। योगेश्वर श्रीकृष्ण गीता में इसका संकेत करते हैं–

'नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।। २/४०

अर्थात् योग युक्त जीवन यापन करने पर यदि लक्ष्य तक पहुँचना न भी हुआ तो भी इतना तो लाभ अवश्य हो जायेगा कि जितना मार्ग तय कर लिया उतना रास्ता कम हो जायेगा। मान लीजिए हमें बीस किलोमीटर जाना है। हम दस किलोमीटर तक ही चल सके, आगे चलना सम्भव न हुआ तो हानि कुछ नहीं हुई। दस किलोमीटर ही अब मार्ग तय करना शेष रहा, जिसे अगले जन्म में उसी साधना से आगे ले जाकर आसानी से तय किया जा सकेगा। जो कुछ हमने प्राप्त कर लिया है, योग में वह हमेशा सुरक्षित रहता है। उसके आगे यात्रा चल पड़ती है दूसरा लाभ और भी है। योगमय जीवन जीने वाला घाटे में नहीं रहता। साधना का विपरीत परिणाम नहीं होता। बल्कि प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी उसके संकल्प बल और ईश्वर के अनुग्रह से अनुकूल बन जाती हैं। गुरुप्रदत्त साधना का लगातार विधिपूर्वक और नियमानुसार श्रद्धा युक्त मन से लम्बे समय तक अभ्यास करने पर सिद्धि दूर नहीं रहती। कदाचित ऐसा न हो जाये तो भी थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करने से जो संस्कार चित्त में बनेगा वह दूसरे जन्म में उसके अन्दर साधना की तीव्र इच्छा और अनुकूल परिस्थिति प्रदान करेगा। यदि गुरुदेव का लाड़ला बन सका तो गुणातीत अवस्था प्राप्त कर जन्म-मृत्यु बुढ़ापा तथा दैहिक, दैविक, भौतिक दुःखों के भय से मुक्त होकर अमृत्व का अधिकारी हो जायेगा। योगेश्वर श्रीकृष्ण इस भयमुक्त अमृतत्व अवस्था की साधना पद्धति गीता के पाँचवें अध्याय में बताते हैं–

'यतेन्द्रिय मनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः।। ५/२८

चिन्तन करने पर ही बाह्य विषय मन बुद्धि में प्रविष्ट होकर चिन्ता बन जाते हैं। अतः अर्द्ध निमीलित नेत्रों द्वारा भ्रूमध्य में दृष्टि को एकाग्र कर समस्त बाह्य चिन्तन को दूरकर चिन्ता रहित हो, उच्छ्वास और विश्वास को समझकर कुम्भक करने से इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि संयत हो जाते हैं। उस अवस्था में इच्छा, भय और क्रोध अपना असर नहीं दिखा पाते। जीवन मोक्ष का अभिलाषी बन जाता है। ऐसी अवस्था में रहने वाले व्यक्ति के जीवन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के सद्‌गुण स्वतः निवास करने लगते हैं। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में मुक्ति के आनन्द का अधिकारी हो जाता है।

भय का कारण मन का रजोगुण और तमोगुण में लिप्त रहना है। यदि मन किसी उपाय से

सतोगुण में संयत रह सके तो जीवन में अभय, सत्व संशुद्धि, ध्यानयोग की प्रवृत्ति, तथा सरलता, समचित्तता, प्रसन्नता स्वत: आ जायेगी। भय द्वितीय वस्तु की उपस्थिति से ही होता है। शास्त्रीय सिद्धान्त है-'**द्वितीयाद्‌भयं भवति**'। जब आत्मा से भिन्न दूसरी सत्ता की प्रतीति होने लगती है। (अविद्या, अज्ञान, चित्त पर वासना के संस्कारों के मल के कारण) तब यह मिथ्या प्रतीति दूसरा रूप धारण कर लेती है। इसे जड़-चेतन की गांठ या अविद्या कहा जाता है। अविद्या के कारण संसार नाम की दूसरी वस्तु भासित होती है। वास्तव में इसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। जैसे पुरुष और उसकी छाया। छाया को देखकर बच्चा डरता है। वह सोचता है कि कोई मेरा पीछा कर रहा है, मुझे पकड़ना चाहता है। वह इस भय से सुरक्षा चाहता है और माँ की गोदी में छिप जाता है। उसी प्रकार जगत से भयभीत होने पर श्री सद्‌गुरु की चरण शरण जाने पर भय नहीं रहता है। अद्वैत अवस्था में कोई भय नहीं। जब सब कुछ वह परमात्मा ही है तो कौन किससे डरे ? गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं-'**अभय होंकि जो तुम्हहिं डराही**। जो ईश्वर से डरता है वह भयमुक्त हो जाता है। जो संसार से डरता है वह मृत्यु का ग्रास बनता है जो ईश्वर से डरता है उसको संसार में किसी का डर नहीं रहता। जो ईश्वर से नहीं डरता, गुरुदेव की आज्ञा में बंधकर नहीं रहता उसे संस्कार से भय लगा रहता है। जो प्रभु के नाम की मर्यादा, स्मरण, भाव एवं ध्यान में रहता है, उसको भयभीत कराने की ताकत संसार की किसी वस्तु, प्राणी या, देवी देवता में तो क्या, स्वयं मृत्यु में भी नहीं है। संसार क्या है ? 'मैं' और 'मेरा', तू और 'तेरा' यही तो संसार है। जीवन सदा 'मैं' और 'मेरा' लेकर ही भयग्रस्त है। यही भवभय है। आश्चर्य है कि जिस 'मैं' और 'मेरा' लेकर वह व्याकुल है उसी 'मैं' को वह जानता तक नहीं। देहबुद्धि होने पर जब देह को ही आत्मा मान लेता है तब 'मैं' और 'मेरा' तथा उसका विस्तार ममता का रूप धारण कर संसार का रूप बन जाता है। यदि सद्‌गुरु की शरणागति हो जाय तो उनकी अहैतुकी कृपा से अपने असली 'मैं' का परिचय मिल जायेगा। 'मैं' को जानते ही संसार नहीं रहेगा। जब संसार ही नहीं तो उसका भय कहाँ रहेगा ? संसार हमारे चित्त में विद्यमान वासना का ही दूसरा नाम है। चित्त वृत्ति के निरोध से चित्त की वासना नष्ट हो जायेगी। वासना के नष्ट होने पर संसार का भय भी नहीं रहेगा। योगाचार्यों ने अनुभव के आधार पर बताया है कि-

'चित्तः कारणमर्थानाम् तस्मिन्नस्ति जगत्त्रयम्।
तस्मिन् क्षीणे जगत्क्षीणं तच्चिकित्स्यं प्रयत्नतः।।

विषयों का कारण चित्त है। चित्त में ही तीनों लोक विद्यमान हैं। चित्तक्षीण होने पर जगत भी क्षीण हो जाता है। अत: चित्त क्षीण करने की चिकित्सा करनी चाहिये। जिस चित्त में विषय घुस पैठ कर गये हैं उसमें सर्वप्रथम यह विश्वास दृढ़ करना है कि आपत्ति, विपत्ति और समय पड़ने पर मेरे प्रभु जी ही मेरी रक्षा करेंगे। विश्वास के साथ-साथ पूर्णरूपेण मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार परमगुरुदेव को अर्पण कर शरणागत हो जाना है। वे जैसा नाच नचायें, नाचते जाना है। मुँह से हाय हाय, या उफ नहीं करना है। उनको जब सौंप दिया तो उनकी चीज हो गयी। वे चाहे दुत्कारें, दुलार

करें या मिटा दें, उनकी मर्जी, दृष्टाभाव और साक्षीभाव में स्थित रहना है। श्री रामकृष्ण परमहंस से उनके शिष्य ने पूछा–कुछ लोगों को उन्हें प्राप्त करने में उतना विलम्ब क्यों होता है ? श्री रामकृष्ण परमहंस ने उत्तर दिया– भोग और कर्म समाप्त हुए बिना व्याकुलता नहीं आती। 'वैद्य कहता है– दिन बीतने दो, उसके बाद साधारण औषध से ही लाभ होगा।' जब तक व्याकुल व्याकुलता नहीं होती तब तक विश्वास नहीं होता। बिना विश्वास के श्रद्धा और भक्ति नहीं होती। बिना भक्ति के अभयपद की उपलब्धि कैसे हो सकती है ? शरणागत भाव कर्मक्षय हुए बिना नहीं होता। नारद जी ने भगवान श्री राम से प्रार्थना की। हे नारायण ! आप अयोध्या में बैठे रहे तो रावण का बध कैसे होगा ? भगवान ने कहा , 'नारद ! रावण का कर्मक्षय होने दो। समय होने पर ही रावण के बध की तैयारी होगी। देवताओं से कह दो भयभीत न हों।' जिन्होंने ज्ञान के नेत्र खोल दिये उनसे अधिक आत्मीय कौन हो सकता है ? फिर उनकी शरणागत होने में क्या डर है ?

चित्त जब शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध के द्वारा आन्दोलित नहीं होता तब विषयासक्ति दूर होने पर निरालम्ब चित्त में शरणागत भाव और गुरुभक्ति का स्फुरण होता है। इसके लिए प्राण को सुषुम्ना वाही करके दीर्घकाल तक प्राण स्थिर कर मस्तक में प्राण को स्थिर करना चाहिये। शास्त्रीय नियम है–

''मारुते मध्य संचारे मनस्थैर्यं प्रजायते।
यः मनसः सुस्थिरी भावः सैषावस्था– मनोन्मनी।''

अर्थात् सुषुम्ना में प्राण के संचरित होने पर मन स्थिर हो जाता है, मन के स्थिर होने की अवस्था में मनोन्मनी समाधि हो जाती है। जहाँ प्राण प्राणेश्वर सद्गुरु तत्व में शरणागत भावापन्न होकर आनन्द का अनुभव करते रहते हैं। विषयासक्त मन से गुरुभक्ति नहीं हो सकती। मन तो एक ही है। चाहो उसे–विषयों में लगाते चाहे हरि के प्रेम, नाम, रूप, गुण, लीला में आसक्त कर दें। संसार के नाम रूपों में यदि मन आसक्त होता तो दुःख और बन्धन होगा। वही मन यदि परम प्रकाशक हरि के नामरूप गुणों के चिन्तन स्मरण में लगेगा तो उसका परिणाम आनन्द और मुक्ति होगा। गुरुनानक हरि के नाम के स्मरण का महत्व बताते हैं–

'भयनाशन् दुर्मति हरणि कलि में हरि को नाम।
निसदिन जो सुमिरन करै सफल होहिं सब काम।।
कह नानक सुन रै मना पर्दै न यम के धाम।।

कबीर कहते हैं– **'पावक रूपी राम हैं, सब घट रहा समाय।**
चित चकमक जिन नहि हद्‌यो धुँआ हो जाय।।

राम अग्निरूप हैं और यह अग्नि सब घटों में ओतप्रोत है किन्तु चित्त की हलचल से और मन की कल्पनाओं के जाल से उस अग्नि के प्रत्येक को दर्शन नहीं हो पाते, केवल धुंआ ही दीख पड़ता है।

जिन्हें अपने नाम रूप की चाह है उनके लिए सद्गुरु शक्ति अव्यक्त है। अपने नामरूप की

उपाधि दूर होने पर ही उस वस्तु तत्व का अनुभव हो सकता है। उसके प्राप्त करने की युक्ति कबीरदास जी इस प्रकार बताते हैं-

निसदिन दहे विरहिनी अन्तरगत की लाय।
दास कबीरा का बुझे सतगुरु गये लगाय।।
जो जन विरही नाम के सदा मगन मन माहिं।
या दरपन की सुन्दरी कहू न पकड़ी बाँह।।

जिस प्रकार विरहिणी पति वियोग में रातदिन व्याकुल रहती है उसी प्रकार सद्गुरु तत्व के विरह में साधक अन्दर की विरहाग्नि से जलता है। उस पतिव्रता के मन में पति वियोग असह्य होता है। वैसे ही प्रभु वियोग में प्रभु को छोड़कर और किसी में चित्त जाता ही नहीं जिनके लिए चित्त हर क्षण व्याकुल है वे तो अन्दर छिपकर बैठे हैं। दर्शन ही नहीं देते। कबीर की इस ज्वाला को अनाड़ी क्या समझेगा ?

यह विरहाग्नि साधारण अग्नि नहीं है। स्वयं सद्गुरु ने यह आग लगाई है। वे स्वयं आकर इसे बुझायें तभी बुझ पायेगी। जब वह ज्वाला भड़कती है तो आँखों से अश्रुधारा बह उठती है। मानो अश्रुधारा उसे बुझाने के लिए प्रयत्नशील हो रही है। पर उल्टा काम होता है। जितने अश्रु निकलते हैं, उतनी ही ज्वाला और भड़क उठती है। यदि वे मिल सकें तो ज्वाला शान्त हो और शीतलता आ जाये। पर उनका मिलन साधारण पुरुषों की तरह का कहाँ है जो आसानी से मिल सके। जैसे दर्पण में सुन्दरी का रूप दीख पड़ता है किन्तु जैसे ही उसे पकड़ने की चेष्टा की जाती है, वह चित्त पकड़ने में नहीं आता। राम के विरह में मन मग्न हो गया है मग्न होकर उसे पाने की चेष्टा की जा रही है तो भी वह अनुभवगम्य तो होता है पर पकड़ में नहीं आता। कूटस्थ चैतन्य के रूप में वह तत्व अनुभवगम्य होता है। यदि वह पकड़ा जाता तो फिर वह चिन्मय न रहकर जड़ हो जाता। क्योंकि जड़ पदार्थों को ही स्वायत्त किया जा सकता है। चैतन्य को नहीं। इसी कारण उसको पकड़कर भी पकड़ नहीं पाते। पाकर कभी वह अनपाया रह जाता है। बुद्धिगम्य होने पर भी बुद्धि से परे हो जाता है। जिसको गुरुदेव यह विरहावस्था देते हैं उसके मन में कोई विषयाभिलाषा आ नहीं पाती। अतएव चित्त निस्पन्द स्थिति में हो जाता है। उस अवस्था में अखण्ड आत्म सत्ता या सद्गुरु सत्ता का आत्मा के द्वारा आत्मा में अनुभव होता है। उस अवस्था में स्थावर जंगम सभी स्थानों में एक अद्वितीय सत्ता के सिवाय कोई दूसरी सत्ता रहती ही नहीं। सभी में परमात्म सत्ता का अनुभव होता है। शत्रु-मित्र, द्वेष्य, बन्धु तथा उदासीन सभी में एकत्व की अनुभूति होती है फिर भय किसको और किससे होगा ! क्या अपनी जीभ को अपने दाँतों से कभी भय लगता है। नहीं, क्यों कि दोनों में 'स्व' की सत्ता विद्यमान है।

प्राणायाम, ध्यान तथा मंत्रजप से जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है उनके अन्दर शान्ति और एकाग्रता की सम्पत्ति आती है। उस अवस्था में सद्गुरु सत्ता का अर्चन वन्दन सभी प्रकार के भय दूर कर देता है। अन्तःकरण में मिथ्या, प्रपंच और वासना विद्यमान रहने पर भय से मुक्ति नहीं हो

सकती। सुषुम्ना में प्राण प्रवाह होने पर चित्तस्पन्दन निरुद्ध हो जाता है और वृत्तियाँ प्रशान्त प्रवाह वाली हो जाती है। सत्वगुण के विकास से जीवन में अभय, अहिंसा अन्तःकरण चतुष्टय की शुद्धि और सर्वभूतहितेरत का भाव विकास पाता है। मांसाहारी कभी भयमुक्त नहीं हो सकता और न ठगी व प्रपंच करने वाला भयरहित हो सकता है। अभय प्राप्ति के लिए शाकाहारी हुए बिना कोई दूसरा उपाय नहीं।

काम, क्रोध, लोभ और भय सभी दुःखों के आदि स्रोत हैं। आवश्यकता से अधिक संग्रह करने वाला भी भयभीत रहता है। कोई चुरा न ले जाय। छापा न पड़ जाय। मेरी इच्छा के विरुद्ध कोई और उस पर अपना अधिकार न कर ले। शक्तिहीन और कमजोर तथा रोगी व्यक्ति सबसे अधिक भयभीत होते हैं। बच्चे भी इसीलिए भयभीत होते हैं कि उनमें उतनी शक्ति का विकास नहीं हुआ है। किशोरावस्था में उतना भय नहीं रहता। इसका कारण यह है कि किशोर का तन, तन, शरीर शक्ति से भरपूर होता है। इस अवस्था में किशोर हैरत भरे काम कर गुजरते हैं उनमें अदम्य साहस, उत्साह और लगन होती है। आत्मविश्वास की मात्रा भी इस अवस्था में अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है। उन्हें खतरे भरे कार्य करने में आनन्द आता है। इसी अवस्था में कल्पना, सृजनशीलता और समूह भावना भी प्रबल होती है। वे इतने निडर और निर्भय हो जाते हैं कि किसी के आदेश की परवाह नहीं करते। कानून की धज्जियाँ इसी अवस्था के लोग अधिक उड़ाते हैं। नियम का उल्लंघन करने में यदि उन्हें वाहवाही मिल सके तो सबसे आगे आकर भूख हड़ताल, धरना, तोड़-फोड़ यहाँ तक कि मानव बम बनने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं होता। उनके अन्दर पीनियल ग्रन्थि का स्राव अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त, पिट्टरी, पेनक्रियाज, एड्रीनल तथा गोने ग्रन्थियों के हारमोन उनके रक्त में अधिक सक्रिय हो जाते हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने बाहरी उद्दीपनों के द्वारा अकारण भयों (fobias) को दूर करने के साहचर्य तथा प्रक्षेपण विधि पर आधारित अचेतन मन की गहराइयों में बैठे वस्तु, स्थान, घटना, व्यक्ति या समय से सम्बन्धित साहचर्य भयों को तिरोहित और दूर करने के लिये स्वप्न विश्लेषण खेल पद्धति तथा सम्मोहन विधियों का आविष्कार किया है। किन्तु ये विधियाँ आत्महत्या की भावना और मृत्युभय को दूर करने में कारगर सिद्ध नहीं हो पातीं।

सभी प्रकार के भयों के नाश के लिए प्राण स्पन्दन को रोकने का अभ्यास करना सर्वोत्तम उपाय होगा। प्राणस्पन्दन से ही मन के संकल्प विकल्प और बुद्धि में विचार और चिन्तन से भाव परिपुष्ट होते हैं। भय भी एक निषेधात्मक या अभावात्मक भाव है। प्राण को कुम्भक के द्वारा स्थिर कर भावात्मक चिन्तन करने से काम, क्रोध, भय और लोभ सभी से छुटकारा मिल सकता है। शास्त्रीय सिद्धान्त है–

'इन्द्रियाणां मनो नाथः मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य लयोनाथः स लयो नादमाश्रितः।।'

अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी मन है। इन्द्रियों के दोषों को दूर करने के लिए मनोनिग्रह करने से

अनुकूल परिणाम प्राप्त हो सकेगा। मन का स्वामी प्राण है। अतः मन की विकलता, निराशा, संकल्प का ढीलापन दूर करने से होने वाले विकारों को लय योग द्वारा ठीक किया जा सकता है। लय के लिए मंत्रजप और ध्यान का आश्रय लेना चाहिये। नादानुसंधान से या मंत्र जप से शरीर में रासायनिक परिवर्तन सम्भव है। इसीलिए आसुरी और पाशविक चेतना से दिव्य चेतना में- आरूढ़ होने के लिए **'जपात् श्रान्तः पुनर्ध्यायेत्, ध्यानात् श्रान्तः पुनर्जपेत्'** अर्थात् मंत्रजप करते-करते थक जाने पर ध्यान करे और 'ध्यान करते-करते थकने पर पुनः जप करें। इस प्रकार जप-ध्यान, जप-ध्यान, जप ध्यान, जप-ध्यान,-जप-ध्यान अनवरत अभ्यास चक्र बनने पर सभी प्रकार के विकारों का समूलोच्छेदन हो जाता है। ध्यान में श्रीसद्गुरु की अभयमुद्रा का ध्यान करते हुए उनको असीम शक्ति सामर्थ्य का सतत् स्मरण चिन्तन करता जाय। उनकी करुणकृपा बिना इस जन्ममरण जरा-व्याधि के भय से सदा-सदा के लिए मुक्त करने वाला अन्य कोई ही हमारा आत्मीय हितैषी जन समर्थ नहीं है। कमजोर सहारे से मन हटाकर निश्चयपूर्वक श्री गुरुदेव की अखण्ड मण्डलाकार सर्वव्यापक सर्वसमर्थ सत्ता में उसे लीन करता चला जाय। **'नास्ति तत्वं गुरोर्परम्'**। श्री सद्गुरु तत्व से बढ़कर और कोई ऐसी सत्ता नहीं जो जीवन के रोग शोक और भय का सदा सर्वदा के लिए निराकरण कर सके। अतः दृढ़ निश्चय के साथ समस्त नश्वर वस्तुओं से ममता और भरोसा त्यागकर श्री सद्गुरु के दुर्लभ श्री चरणों का आश्रय लें। उनकी शरणागति से मन और शरीर और बाह्य विषयों, पदार्थों और उत्तेजनाओं से हटकर आत्म राज्य की यात्रा में चलने के लिए सक्षम बन जायेगा। असम्भव लगने वाली स्थितियाँ सम्भव बन जायेगी। उनकी अहैतुकी कृपा से भवसागर सूख जायेगा फिर उसमें रहने वाले मगरमच्छ और दूसरे भयोत्पादक जीवजन्तु कैसे बचे रहेंगे ? उनकी कृपा पाकर मन प्राण और बुद्धि को आज्ञा चक्र के ऊपर स्थिर करने की कला आ जायेगी जहाँ काम, क्रोध, भय, लोभ, मोह आदि की कोई दाल नहीं गलेगी। उस अवस्था में पहुँचने पर सद्गुरु शरणागत मीरा गा उठी- **'मोहि लागी लगन गुरु चरणन की।' भवसागर सब सूख गयो है, आसु नहीं अब तरननिकी।**

***

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामपि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनी पत्रास्थितं राजते।
स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते।
प्रायेणा धमध्म मोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम्।

–भर्तृहरि नीति शतक

गरम लोहे पर जिस जल की बूंद पड़ने पर उसका नामोनिशान नहीं रहता, वही जल की बूंद कमल के पत्ते पर पड़ने से मोती जैसी हो जाती है और वही जल की बूंद स्वाति नक्षत्र में समुद्र की सीप में गिरती है तब सचमुच मोती हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि संसार में अधम, मध्यम और उत्तम गुण संगति के प्रभाव से ही होते हैं।

परमात्मा ही जीवात्मा का सत्यस्वरूप है

(डा० ऋषिराम शर्मा, सेवानिवृत प्राचार्य, बी०एच०यू०)

प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि मैं कौन हूँ ? मेरा उद्भव कहाँ से हुआ है और मृत्यु के पश्चात् मैं कहाँ चला जाऊँगा ? क्या जन्म-मरण मेरी अवश्यंभावी नियति है ? जब तक इन मूल प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिल जाता, तब तक न शांति है, न विश्राम है और न दुःखों से मुक्ति है। इस विषय पर भिन्न-भिन्न धर्मों का दृष्टिकोण भी भिन्न-भिन्न है। इस्लाम धर्म में जीव का विश्राम-स्थल जन्नत या जहन्नुम है। जो बन्दा खुदा का प्यारा है उसे जन्नत में स्थान मिलता है और जो खुदा का प्यारा नहीं है उसे मृत्यु के बाद जहन्नुम में स्थान मिलता है। ईसाई धर्म के अनुसार भी अच्छे कर्म करने वाले हैविन में स्थान पाते हैं और पाप कर्मी हैल में स्थान पाते हैं। इसके अतिरिक्त जन्म से पूर्व जीव कहाँ था और मृत्यु के पश्चात स्वर्ग तथा नरक के अतिरिक्त अन्य भी उच्च गाम्य स्थान हैं। इसका उन्हें ज्ञान नहीं है। जीवात्मा में परमात्मा का पूर्ण ऐश्वर्य छुपा है और उसे प्राप्त किया जा सकता है। इसका भी उन्हें कोई ज्ञान नहीं। सनातन धर्म में स्वर्ग या नरक जीवात्मा की यात्रा के अंतिम विश्राम-स्थल नहीं, अपितु लम्बे मार्ग की दो शाखाओं के पड़ाव मात्र हैं। इन समस्त दृष्टिकोणों में मूल प्रश्नों का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं है।

सनातन धर्म के शास्त्रों में इन प्रश्नों का विवेचन तथा विश्लेषण किया गया है किन्तु वह शब्द ज्ञान है और वह प्रत्यक्ष अनुभूति के अभाव में सन्तोषजनक नहीं है, क्योंकि

न गच्छति विना पानं व्याधिरौषधशब्दतः।
विना अपरोक्षानुभवं शब्दज्ञानेन न मुच्यते।।

अर्थात् जैसे कोई औषधि किसी रोग विशेष के लिए रामबाण ही क्यों न हो किन्तु उसका सेवन किये बिना केवल उसका नाम उच्चारण करने से रोग दूर नहीं होता उसी प्रकार जब तक दृष्टा तथा दृश्य के प्रथक्करण का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो जाता तब तक शब्दज्ञान मात्र से जीवात्मा को मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। वस्तुतः दृष्टा तथा दृश्य का संयोग ही संसार का कारण है और प्रज्ञालोक की ज्ञानदीप्ति द्वारा इसका पर्दाफाश होते ही दृष्टा अपने सत्यस्वरूप में स्थित हो जाता है। उसी को भवबन्धन से मुक्ति कहा जाता है। भगवान कृष्ण ने इसी तथ्य की पुष्टि की है कि

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयंयोगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।। (गीता ४/३८)

अर्थात् ज्ञान के समान अन्य कोई भी वस्तु या साधना पवित्र नहीं किन्तु वह तभी सार्थक होता है जब चिरकाल तक योगसाधना द्वारा योगसिद्धि प्राप्त नहीं कर ली जाती। उपनिषदों में इसी सिद्धान्त को हृदयग्रन्थी के छेदन के रूप में वर्णन किया है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते सर्वकर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

अर्थात् दृष्टा और दृश्य के संयोग वाली हृदयग्रन्थि का जब छेदन हो जाता है यानि जब वृतिरूप दृश्य का अभाव हो जाता है तो दृष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है और तब अविद्या द्वारा जनित समस्त संशय तथा क्लेश-कर्म नष्ट हो जाते हैं।

योगसिद्धि कैसे प्राप्त होती है, यह विषय हम आगे के लेखों में लेंगें, अभी हम शब्दज्ञान की ही चर्चा करेंगे। मेरी दृष्टि में वेदों, उपनिषदों तथा महापुरुषों द्वारा रचित अन्य शास्त्रों में इसका विस्तार से वर्णन है किन्तु जनसाधारण की पहुँच के बाहर है। प्रभुकृपा से प्राप्त गीता का ज्ञान सभी शास्त्रों का सार है तथा गीताप्रेस की महान सेवा से सुलभ भी है। अतः हम अपने प्रश्नों का उत्तर सुलभ शास्त्रों में खोजेंगे।

भगवान कृष्ण ने स्वयं स्वीकार किया है कि-

आत्मात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्तैव च।।

अर्थात समस्त जीवात्माओं की अन्तरात्मा के रूप में मैं ही हूँ। ऐसी जीवात्माओं का उत्पत्ति स्थान, उनका वर्तमान तथा उनका अन्तिम विश्राम-स्थल भी मैं ही हूँ। उपनिषद् भी इसकी पुष्टि करते हैं कि-

ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या जीवोऽब्रह्मैव नापरः

अर्थात् केवल परमात्मा ही परम सत्य है और नाम तथा रूप वाला दृष्टिगोचर जगत् स्वप्नवत् मिथ्या है, क्योंकि स्वप्न निद्रावरण के कारण सत्य भाषित होता है और निद्रावरण के हटते ही मिथ्या हो जाता है। उसी प्रकार यह जगत भी अविद्या के आवरण में सत्य भाषित होता है और अविद्या के अभाव में नष्ट हो जाता है यानि ज्ञानी की दृष्टि में मिथ्या तथा अज्ञानी की दृष्टि में सत्य भाषित होता है। जीवात्मा का जीवभाव अविद्या जनित है। अतः अविद्यावरण के दूर होते ही जीवभाव उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार अन्धकार के कारण रज्जु में सर्पभ्रान्ति तथा सर्पभय अन्धकार के अभाव में स्वतः नष्ट हो जाते हैं। जीवभाव के नष्ट होते ही जीवात्मा तथा परमात्मा उसी प्रकार एकात्मता को प्राप्त कर लेते हैं जिस प्रकार घट के नष्ट हो जाने पर घटाकाश तथा महाकाश में एकात्मता हो जाती है। गीता में भगवान कृष्ण ने इसी एकात्मता को इस प्रकार दर्शाया है कि-

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता: महेश्वरः।
परमात्मेति चप्युक्तो देहे अस्मिन् पुरुषः परः।। (गीता १३/२२)

अर्थात् ज्ञानदृष्टि से देखा जाय तो वास्तव में इस शरीर में वास करने वाला जीवात्मा परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब है जो तमोगुण तथा रजोगुण के आवरण के कारण अपने असली स्वरूप को प्रदर्शित नहीं कर रहा है। वस्तुतः वही परमात्मा इस शरीर में उपद्रष्टा के रूप में विराजमान हैं जो कि मन तथा बुद्धि की सभी वृत्तियों का साक्षित्व करता है और उन सब का सदैव ज्ञाता है। वही परमात्मा अनुमन्ता भी है जो कि प्रकृति द्वारा संचालित कर्मफल के विधान को अपनी स्वीकृति प्रदान करते हैं। वही परमात्मा अपनी योगमाया के सहयोग से सभी शरीरधारियों का भरण-पोषण करते हैं। वही सब लोकों का स्वामी परमात्मा जीवात्मा के रूप में अपनी ही प्रकृति के गुणों का सुख-दुख के

रूप में भोग कर रहा है। जीवात्मा में संसारित्व अज्ञान की देन है। इसीलिए भगवान कृष्ण कहते हैं कि-

नादत्ते कश्चित् पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ते जन्तवः।।

अर्थात् सर्वव्यापक परमात्मा न पाप ग्रहण करता है और न पुण्य। अतः जीवों का कर्मबन्धन केवल अज्ञानमात्र है जिसके कारण सभी जीव अपने को मोहमाया में फंसा हुआ मानते हैं। जब तक जीवात्मा जीवभाव रूप घटाकाश में सीमित है, तभी तक उसमें संसारित्व है। अविद्या रूपी घट के नष्ट हो जाने पर घटाकाश स्वतः ही महाकाश में समा जाता है, यानि जीव भाव के नष्ट होने पर जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। यही उसका सत्यस्वरूप है। अब मैं बताना चाहूँगा कि जीवात्मा में यह संसारित्व आया कहाँ से है और इसका नाश किस तरह किया जा सकता है? भगवान पतंजलि ने पाँच क्लेशों को जीवभाव का मूल कारण बताया है। यह पाँच क्लेश प्रकृति के तीन गुणों के विकार हैं। यह सूक्ष्म हैं तथा इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि की वृतियों के रूप में प्रकट होते हैं। यद्यपि आत्मा परम शुद्ध है तथा इन वृतियों का ज्ञाता है किन्तु योगमाया की यह विलक्षणता है कि आत्मा स्वयं अपने आपको वृतियों के रूप में ही देखता है और इसी कारण पाँच क्लेशों की तीव्र धार में बहता चला जाता है। इनके प्रभाव से बचने के लिए अन्तःकरण को तीन परिणामों पर विजय पाकर शुद्ध करना पड़ता है। चित्त के यह तीन परिणाम हैं **एकाग्रता परिणाम, समाधि परिणाम** तथा **निरोधपरिणाम**। इनका वर्णन बाद में करेंगे। पहले हम क्लेशों को समझने का प्रयास करेंगे। अविद्या अन्य क्लेशों की जन्मभूमि है और यह क्लेश चार अवस्थाओं में रहकर अपना खेल खेलते हैं। पहली अवस्था का नाम **सुप्तावस्था** है। इसमें क्लेश बीज रूप में गुप्त रहता है, प्रत्यक्ष में प्रतीत नहीं होता जिसके कारण मिथ्या अहंकार हो जाता। श्री नारद मुनि का काम पर विजय पाने का अहंकार इसी का परिणाम था। दूसरी अवस्था है **तनुअवस्था**। इसमें तपस्या, साधना तथा स्वाध्याय के परिणाम स्वरूप क्लेश क्षीण हो जाते हैं और उनका प्रभाव क्षणिक तथा उपद्रवहीन होता है, तीसरी अवस्था है **विच्छिन्नावस्था**। इसमें कभी शान्त कभी उग्ररूप धारण कर लेते हैं। चौथी अवस्था है उदारावस्था। इसमें पूर्णरूप से क्रियाशील एवं बुद्धि पर मलावरण डाल देते हैं। उसी अज्ञान के आवरण से जीवात्मा संसार में मोहित हो जाता है। अविद्या का शाब्दिक अर्थ विपरीत ज्ञान है, यानि अनित्य में नित्यबुद्धि, दुःख में सुखबुद्धि, अशुद्धि में शुद्धि बुद्धि तथा अनात्मा में आत्मबुद्धि जैसे संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान है और परिवर्तनशील है, फिर भी पुत्र की मृत्यु पर पीड़ा, सम्पत्ति नष्ट होने पर पीड़ा। इतना ही नहीं कि एक ही घटना से अत्यन्त खुशी तथा पीड़ा का अनुभव। जैसे वर्ल्ड टावर की घटना से लाखों को पीड़ा तथा ओसामा बिन लादेन और उसके समर्थकों को हर्षोल्लास का अनुभव। इसी प्रकार ऊपर चर्म से ढके शरीर में अशुद्धि ही अशुद्धि भरी है फिर भी सुन्दर मानी जाने वाली युवती के लिए हजारों की हत्या हो जाती है, अनेक राजाओं में युद्ध हो जाता है। सभी इस तथ्य से परिचित हैं कि पदार्थ में कोई स्वाद या सुख-दुख नहीं, अन्यथा स्वप्नावस्था में पदार्थ की अनुपस्थिति में कोई स्वाद तथा आनन्द का अनुभव संभव नहीं होना चाहिए था। एक कुत्ते को हड्डी में से कुछ भी प्राप्त नहीं होता। वह उसे वर्षों भी चाहता रहे तब

भी हड्डी वैसे ही रहेगी फिर भी वह उसके लिए अपनी जान पर खेलकर भी अन्य कुत्तों से लड़ता है जैसे कि उसे उसमें सुख का भंडार मिल गया हो। इसी प्रकार यदि कोई तुम्हारा रूप देखकर और तुम्हारा नाम लेकर गाली दे या अपमान करे, या मार-पिटाई भी करे तो तुम क्रोध से जलने लगते हो जबकि नाम तथा रूप जड़ है और वह तुम नहीं हो। तुमने अनात्मा को ही आत्मा समझा हुआ है। यह सब अविद्या के परिणाम हैं।

दूसरा क्लेश है **अस्मिता**। इसमें आत्मा और दर्शन शक्तियों यानि पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि की एकात्मता का अनुभव होता है। जैसे आँख कोई वस्तु देखती है तो तुम समझते हो कि मैं देख रहा हूँ। मन दुःखी होता है तो तुम दुखी हो जाते हो जबकि **"दुखादयः यो मनसोः विकाराः"** वाली बात उपनिषदों में विस्तार से वर्णित है। इस प्रकार मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों में निरन्तर जितनी वृत्तियाँ उठती हैं, वह सब आत्मा में प्रतीत होती हैं जबकि भगवान कृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है कि-

यथा सर्वगतं सौक्ष्मादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।।

अर्थात् जिस प्रकार आकाश में लाखों घटनायें घटती हैं, लाखों विस्फोट होते हैं, ज्वालामुखी फटते हैं किन्तु उससे आकाश में न तो कोई विकार आता है और न कुछ घटता या बढ़ता है। अनेक तारागण, उपग्रह आदि प्रकट होते हैं, नष्ट भी हो जाते हैं किन्तु वह निर्विकारी ही रहता है। इसी प्रकार शरीर के अंग प्रत्यंग में व्याप्त आत्मा भी मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों की वृत्तियों से विकारी नहीं होती किन्तु **"द्रष्टा दृशिमात्रो शुद्धोऽपि प्रत्यानुपश्यः"** के अनुसार आत्मा परमशुद्ध तथा साक्षीमात्र है, फिर भी मस्तिष्क में उठने वाली वृत्तियाँ उसमें उसी प्रकार दिखाई देती हैं जैसे रंगीन तथा चित्रित माध्यम पर रखी हुई स्फटिक मणि में माध्यम के रंग तथा चित्र दिखाई देते हैं।

तीसरा क्लेश राग है। जब कोई भी इन्द्रियवृत्ति मन को अच्छी लगती है यानि सुखानुभव कराती है तब तुरन्त उसमें मन की आसक्ति हो जाती है, उसे पाने की तृष्णा तथा आकर्षण उत्पन्न होना ही राग है। इसी प्रकार जब मन के प्रतिकूल इन्द्रियवृत्ति पैदा होती है तो उससे द्वेष का क्लेश पैदा होता है जो दुःखरूप है। इन्हीं राग और द्वेष रूपी दो समानशक्ति तथा विपरीत दिशा वाले बलों से माया का चक्र बनता है। पाँचवें क्लेश का नाम **अभिनिवेश** है। यह सभी जीवों में जीवित बने रहने की भावना है। इसी को मृत्युभय भी कहा है। प्रत्येक जीवात्मा चाहती है कि उसकी कभी मृत्यु न हो। उसका कारण है उसकी संसार में आसक्ति जब तक यह पाँच क्लेश किसी न किसी अपनी अवस्था में विद्यमान रहते हैं तब तक जीव माया के बन्धन में है। जैसे ही इन पर विजय प्राप्त हो जाती है, वह मोक्ष पा जाता है। अष्टावक्र जी ने राजा जनक को यही रहस्य सूक्ष्म में समझाया-

यदि देहं पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि।
अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यसि।।

अर्थात् हे राजन्, यदि तुम चित्त को समाहित करने की योग्यता प्राप्त कर अपने को शरीर से पृथक कर अस्मिता क्लेश से मुक्ति पा लो और अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित हो जाओ तो तुम इसी क्षण परम सुखी, परम शान्त और माया के बन्धन से मुक्त हो जाओगे।

यह पाँच क्लेश कर्माशय को जन्म देते हैं। यह कर्माशय जीव द्वारा शरीर बुद्धि के अहंकार से

होने वाले कर्मरूपी जल का समुद्र है जिसमें अनन्त जन्मों के कर्मों के संस्कार संचित हैं और जो अतीत, आगामी और वर्तमान जन्मों का एकमात्र कारण है। यह जन्म कैसे होते हैं इस पर शास्त्रों का वचन है कि-

यादृशी वासनामूले वर्तते जीवसंगिनी।
तादृशं वहत्ते जन्तुः कृत्याकृत्यविभोभ्रमम्।।

अर्थात् पाप और पुण्य कर्मों के फल के विधानानुसार प्रारब्ध नाम की लहर कर्माशय रूपी समुद्र में उठती है तो जीवरूपी जन्तु लहर के सहारे बहने लगता है यानि जन्म लेता है। इसी प्रारब्ध के नियमानुसार उसकी योनि अर्थात् शरीर प्राप्ति, उस शरीर में प्राप्त होने वाले सुख तथा दुखरूपी भोग तथा उस शरीर की आयु निर्धारित होती है। इसीलिए शरीर का नाम भोगायतन रखा गया है और उसकी मृत्यु निश्चित होती है। कोई भी डाक्टर मृत्यु के संयोग को नहीं टाल सकता, निमित्त चाहें जो बने। जब पुण्यकर्म अपना फल देता है तो स्वाभाविक रूप में सतोगुण की वृद्धि होती है और सुखानुभूति होती है और जब पापकर्म अपना फल देता है तो तमोगुण तथा रजोगुण दुख की वृति के रूप में प्रकट होते हैं। प्रारब्ध का भोग अवश्यंभावी होता है, क्योंकि भगवान कृष्ण ने बताया है कि-

स्वभावजेन तु कौन्तेय निविद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छवि यत् मोहात् करिष्ये अवशोऽपितत्।।

अर्थात् जीवात्मा प्रारब्ध के फलस्वरूप अपने स्वभाव से इस तरह बंधा हुआ है कि यदि वह अज्ञानवश कोई कर्म न भी करना चाहें तो भी वह कर्म उसे करना ही पड़ेगा, क्योंकि प्रकृति उसे परिस्थितिवश विवश कर देगी।

अभी तक हमने जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन किया है और भगवान की त्रिगुणात्मक माया ने जैसे उसे क्लेश और कर्मों के जाल में बाँध रखा है। इसके विपरीत परमात्मा का स्वरूप है कि-

"क्लेशकर्मविपाकाशयैः अपरामिष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः"

अर्थात् परमात्मा क्लेश तथा कर्म और उनके विपाक यानि प्रारब्ध से कभी छुआ तक नहीं गया है। इसीलिए वह उत्तमपुरुष है। माया भी परमात्मा की सेविका है। ऐसी विडम्बना में जीवात्मा कभी परमात्मा नहीं हो सकती। किन्तु यह तर्क उचित नहीं, क्योंकि भगवान पतंजलि कहते हैं कि-

"स्वस्वामीशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः"

अर्थात् प्रकृति और पुरुष का संयोग जीवात्मा के लिए अपने सत्यस्वरूप को प्राप्त करने के लिए ही हुआ है। इसी संयोग के माध्यम से जीवात्मा अष्टांग योग की साधना के द्वारा अपने अन्तःकरण की अशुद्धि को नष्ट कर तथा ज्ञानदीप्ति को प्रकट कर अपने सत्यस्वरूप के दर्शन कर सकता है। यह सत्यस्वरूप ही परमात्मा का स्वरूप है जो कि ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा देखा जा सकता है। यह ऋतम्भरा प्रज्ञा चित्त के तीनों परिणामों पर विजय करने पर प्राप्त होती है। प्रज्ञा की भी सात, प्रान्तभूमि हैं जिनका ज्ञान समाधि के द्वारा होता है।

(शेष आगे)

संकल्प शक्ति व योग

कु० रुक्मिणी वर्मा, सहारनपुर।

(गतांक से आगे)

पूर्व प्रकाशित अंक 'संकल्प शक्ति व योग'-विषय को अपनी चरम सीमा की ओर ले जाते हुए इस बात का उल्लेख किया गया था कि जब साधक संकल्प को यथार्थ रूप देना प्रारम्भ करता है तो उसी समय इष्टदेव के हृदय में भी संकल्प जाग्रत होना आरम्भ हो जाता है। बिना इष्ट कृपा के कोई भी साधना सफल नहीं होती। साधक की संकल्प शक्ति सिद्धों में संकल्प जगाती है। जब इष्ट के हृदय में संकल्प जगता है कि अमुक साधक का कल्याण हो तो शक्तिपात की धारा प्रवाहित होती है और वास्तविक दीक्षा का पल भी वही होता है।

आइये, अब साधक की 'संकल्प शक्ति व योग' से आगे के व चरम सोपान 'सिद्ध संकल्प शक्ति व योग' पर विस्तृत दृष्टि डालने का प्रयत्न करें। जैसा कि सिद्ध योग के पाठक स्पष्टतया जानते हैं कि दीक्षा कई प्रकार की होती है जैसे-दृग दीक्षा, वाक् दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, मंत्र दीक्षा तथा संकल्प दीक्षा। इन सब दीक्षाओं में 'संकल्प दीक्षा' अधिक महत्वपूर्ण है, या फिर ऐसा समझ लीजिए कि दृग दीक्षा में संकल्प दीक्षा अदृश्य रूप से काम करती है, वाक् दीक्षा भी संकल्प दीक्षा के बिना अधूरी सी रहती है। स्पर्श दीक्षा भी बिना संकल्प दीक्षा के अधिक लाभकारी सिद्ध नहीं होती। मंत्र दीक्षा में जब संकल्प दीक्षा का योग होता है तो साधक मंत्र मिलते ही समाधि की श्रेणियों में प्रवेश कर जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सभी प्रकार की दीक्षाओं में 'संकल्प दीक्षा' प्रभावकारी होती है। सिद्ध पुरुषों की दृष्टि अनेक व्यक्तियों पर पड़ती है, परन्तु उसमें जिस व्यक्ति के लिए संकल्प निहित रहता है, उस व्यक्ति पर दृष्टि पड़ते ही उसका कल्याण हो जाता है। उदाहरण के तौर पर ऋषिकेश में शाम के समय श्री प्रभु जी घूमने जाया करते थे। वे प्रतिदिन देखते थे कि गंगा किनारे पत्थर पर एक साधु भजन में अर्थात् ध्यान प्रक्रिया में बैठा हुआ है। श्री प्रभु जी उस व्यक्ति के करीब तक जाते और मात्र देखकर वापस चले आते। हमारे आराध्य देव श्री गुरुदेव जी ने पूछ ही लिया, प्रभो ! आप उन्हें क्यों देखते हैं ? प्रभु जी ने उत्तर दिया कि, ''बस ! ऐसे ही देख लेता हूँ।'' तीन दिन बाद गुरुदेव देखते हैं कि वही गंगा किनारे वाला साधु दण्डवत करता हुआ आश्रम की ओर आ रहा है। आश्रम में आकर साधु जी ने कहा कि हे प्रभो ! आप गंगा किनारे आकर मेरे सिर पर हाथ रख जाते थे। परन्तु मैं सोचता रहता था कि ये तेजस्वी विभूति कौन हैं ? आज मैं आपके तेज की किरण के सहारे को लेकर उसी तेज में चलकर आया हूँ। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मात्र देखने से ही उस साधु के अन्दर शक्ति संचार होने लगा और समाधि को प्राप्त हुआ। यह उसकी 'दृग दीक्षा' थी। श्री प्रभु जी ने आँखों से देखा और शक्तिपात संचारित हो गया। अब जरा सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाये तो इस दृग दीक्षा से अधिक अंश में संकल्प दीक्षा संचारित हुई। ऐसा तो नहीं था कि श्री प्रभु जी ने केवल उन साधु जी को ही देखा होगा। गंगा किनारे व राह में अनेक व्यक्ति श्री प्रभु जी की दृष्टि में आये होंगे। परन्तु इसी पर शक्तिपात क्यों

हुआ। कारण स्पष्ट है कि श्री प्रभु जी ने संस्कार चक्र को जान लिया, निष्ठा व लगन देखी तो मन में उसके कल्याण निमित्त संकल्प उठा और उस संकल्प की शक्ति दृष्टिपात द्वारा शक्तिपात कर गयी। कहने का तात्पर्य, संकल्प ही वह बल है जो शरीर के विभिन्न अंगों में अपना बल व कार्य भरता है। दृग दीक्षा का दूसरा उदाहरण-इलाहाबाद में हमारे एक गुरुभाई रहते हैं। इनका पूरा नाम श्री रघुनाथ प्रसाद यादव है। इनकी दीक्षा से पहले ही इन्हें बहुत बड़ा सौभाग्य प्राप्त हुआ कि गुरुदेव का इनके घर पर आगमन हुआ। जिस समय गुरुदेव जी वापस लौटने लगे तो इनके घर पर जो गाय थी, उस पर गुरुदेव की दृष्टि पड़ी और महाराज जी ने पूछा, 'लल्ला यह कितना दूध देती है ?' भाई जी ने बताया कि प्रभु जी अभी इस गाय के कोई बच्चा नहीं हुआ, इस कारण यह अभी दूध नहीं देती है। लेकिन महान आश्चर्य ! गुरुदेव के जाने के बाद गाय दूध देने लगी जबकि गाय के कोई बच्चा भी नहीं हुआ। गुरुदेव जी ने गाय को देखा व दूध देने का संकल्प मन में उठा तो संकल्प चरितार्थ हो गया। अर्थात् यहाँ भी दृग शक्ति में संकल्प शक्ति पूर्ववत् विद्यमान थी। 'वाक् दीक्षा' में जो भी सिद्ध पुरुष मुख से कह देते हैं, वही घट जाया करता है। 'दृग दीक्षा' में देखना फिर संकल्प का उठना होता है। परन्तु 'वाक् दीक्षा' में पहले संकल्प का उठना फिर शब्दों का संचार होता है। उदाहरण द्वारा स्पष्ट करने में सुविधा रहेगी।

नानौता में हमारे परम आदरणीय व पूजनीय शिक्षा गुरुदेव जिनकी पाठशाला में हमने प्राइमरी शिक्षा (कक्षा पाँच) तक प्राप्त की, उनका नाम ब्रह्मचारी श्री ब्रजमोहन वशिष्ठ जी हैं इनके बड़े भाई का नाम श्री 'शिव प्रसाद वशिष्ठ' है। जब श्री शिव प्रसाद जी के यहाँ पुत्र हुआ तो कुछ समय बाद गुरुदेव का आगमन हुआ। गुरुदेव जी नानौता लगभग हर वर्ष ऋषिकेश में 'गंगा-दशहरा' पर्व मनाने के बाद आया करते थे। अस्तु, गुरुदेव ने बच्चे को देखा और अकस्मात उनके श्री मुख से शब्द निसृत हुए ''डाक्टर साहब है ये, डॉक्टर साहब ! डा. ऋषिराज वशिष्ठ हैं ये। समय बीता और आज वह डॉ. ऋषिराज वशिष्ठ ही हैं। यह सब वाणी में पूरित संकल्प शक्ति का प्रभाव है। अतः सिद्ध पुरुष या योगी लोग जो भी शब्द मुख से निकाल लेते हैं वह खाली नहीं जाता। 'श्री सद्गुरुदेव की अद्भुत कृपालीलाएँ 'केशवदेव उपाध्याय जी' द्वारा रचित पुस्तक में घटना छपी है कि बसन्ती देवी जो नगीना धामपुर के पास ग्राम चाँदपुर की निवासी थी, उसके फेंफड़े क्षयरोग के कारण खराब हो चुके थे। डाक्टर ने रोग लाइलाज घोषित कर दिया। अपनी मृत्यु करीब जानकर ये अपने कुलदेवता भोलेनाथ की पूजा अर्चना में ही अपना सारा समय व्यतीत करने लगीं। पुण्य संचित होने पर किसी गुरु भाई द्वारा श्री प्रभु जी की लीलाओं से प्रेरित होकर ये ऋषिकेश योग साधन आश्रम में अपने कुटुम्बी जनों के साथ आ गयी। इनके पति की मृत्यु हो चुकी थी और एक पुत्र रामकुमार था जिसका पढ़ाई में बिल्कुल मन नहीं लगता था। स्वभाव से भी इनका पुत्र नालायक था। जब ये आश्रम में आयी तो प्रभु जी के चरणों में रो-रोकर अपना दुखड़ा सुनाया। श्री प्रभु जी कहा कि शरीर जीर्ण-शीर्ण होने के कारण तुम कोई योग साधन भी नहीं कर पाओगी, क्योंकि जीवनी शक्ति का काफी अभाव हो गया है। अतः डॉक्टरी उपचार ही ठीक रहेगा। परन्तु बसन्ती

देवी के अधिक करुणा व प्रार्थना भरे शब्दों पर श्री प्रभु ने कहा कि ठीक है 'तुम इसी आश्रम में रहकर, यहीं का भोजन करो। प्रभु कृपा करेंगे, तुम ठीक हो जाओगी। उस दिन से बसन्ती देवी ने आश्रम की सफाई आदि का तथा समय पर स्नान, पूजा, भोजन आदि का श्रद्धा से नियम-पालन किया और कुछ ही दिनों में पूर्णतया स्वस्थ हो गयी। आश्रम में जो भी व्यक्ति श्री प्रभु जी के चरणारविन्दों में आते थे, बसन्ती देवी अपने रुमाल से उनके जूते-चप्पल साफ करके, करीने से रखा करती थी। एक दिन आश्रम में एक गरीब व्यक्ति मैले-कुचैले वस्त्र पहनकर आया। जैसे ही उस गरीब आदमी ने जूते निकाले तो बसन्ती देवी ने अत्यन्त श्रद्धा से उन जूतों को, जो काफी फटे हुए थे, अपने रुमाल से साफ किये। श्री प्रभु जी यह सब देख रहे थे तो प्रसन्न मुद्रा में बोले, ''बसन्ती ! आओ बैठो, हम तुम पर आज बहुत प्रसन्न हैं। अतः आज जो भी इच्छा करोगी, पूरी होगी, अस्तु जो इच्छा हो माँग लो।'' बसन्ती देवी ने अन्य कुछ नहीं माँगा, बस इतना कहा कि प्रभु जी मेरी पुत्र रामकुमार जो नालायक है, पढ़ने में अत्यन्त कमजोर है, आज्ञा पालन नहीं करता है, हमारे कहने से बाहर है। आप ऐसी कृपा करें कि वह पुलिस कप्तान बन जाये। श्री प्रभु जी मुस्कराकर बोले, ''अरी ! यह क्या माँग लिया! कोई अलौकिक वस्तु माँग लेती। आज तो मैं इस मुद्रा में था कि जो भी मांगती, वह सब दे देता। तुमने तो बहुत छोटी सी बात कही है। खैर ! रामकुमार अब अवश्य ही पुलिस कप्तान बनेगा। उस दिन से रामकुमार की बुद्धि प्रखर हो गयी और स्नातक डिग्री में उत्तम अंक प्राप्त करके, एक दिन समय आने पर वह पुलिस कप्तान बन गया। इस घटना से सिद्ध हुआ कि संकल्प पहले मन में उठा फिर वाणी में आया और चरितार्थ हो गया। अतः स्पष्टतया ही इस विचार की पुष्टि होती है कि सिद्धवाणी में 'संकल्प शक्ति' अमोघ होती है।

शबरी के गुरु महर्षि मतंग जी ने वरदान दिया था कि तुम्हारे दर पर स्वयं राम आयेंगे और वही हुआ। महर्षि मतंग का वाक्य खाली नहीं गया क्योंकि संकल्प शक्ति के साथ कहे वाक्य अक्षरशः सत्य ही होते हैं। दृग दीक्षा व वाक् दीक्षा दोनों में संकल्प शक्ति इस प्रकार कूट-कूट कर भरी है, जिस प्रकार आम में मिठास। अब स्पर्श दीक्षा के विषय में गहनता से सोचे तो यहाँ भी संकल्प शक्ति का कमाल ही है। पहले संकल्प फिर स्पर्श, बस हो जाता है जो भी करना होता है। हमारे शहर सहारनपुर में मैदामील वाली 'शशि प्रभा जी' श्री गुरुदेव भगवान की अत्यधिक लाडली व कृपापात्र शिष्याओं में से एक हैं। मैं जब भी ऋषिकेश योग साधन आश्रम में जाती हूँ तो हमारी शशि प्रभा बहिन जी जिन्हें हम बुआ जी कहकर इंगित करते हैं, हमें आश्रम में इनके दर्शन हो जाते हैं, क्योंकि अब ये कनखल में रहती हैं। मैं बुआ जी से प्रभु जी की लीलाओं और गुरुदेव भगवान की लीलाओं को हर बार सुनती हूँ। यहाँ उस लीला का वर्णन उचित समझ रही हूँ, जो स्पर्श दीक्षा से सम्बन्धित है। बुआ जी ने बताया कि ये जब श्री चरणों में ऋषिकेश जाया करती थी तो अपने साथ अपने नौकर को भी ले जाया करती थी। नाम तो मुझे याद नहीं आ पा रहा है कि इन्होंने अपने नौकर का क्या नाम बताया था। अतः एक कल्पित नाम रामू या भोलू कुछ भी मान लीजिए। भोलू आश्रम की बहुत बारीकी से सफाई किया करता था। बुआजी की भी और गुरुदेव की भी हर आज्ञा

का पालन किया करता था। उसके कार्य में तत्परता बहुत थी। वह जान गया था कि महाराज जी को सफाई बहुत पसन्द है, अतः आश्रम में लगे हर वृक्ष का पत्ता-पत्ता धो डालता था, कहीं पर धूल नहीं रहने देता था। इतनी निष्ठा व लगन के होते हुए भी भोलू कभी भी गुरुदेव जी के पावन श्री चरण-कमलों में शीश नहीं झुकाता था। बुआजी टोकती थी, परन्तु यही बात नहीं मानता था। एक दिन गुरुदेव तख्त पर विराजमान थे। अन्य गुरुभाई-बहिन भी श्री चरणों में बैठे हुए थे। भोले भी पूरी सफाई करके आया तो बुआ जी ने शीश झुकाकर प्रणाम करने को कहा। उसके इस बात की अवज्ञा करने पर सबके सामने बुआजी ने कहा कि क्या बात है जो तुम शीश नहीं झुकाते ? हर काम के लिए तैयार रहते हो तो शीश झुकाने में क्या हर्ज है ? भोले ने बड़े बुलन्द शब्दों में छाती ठोककर कहा, ''दलाईलामा का शिष्य हूँ मैं, ये शीश झुकेगा तो दलाईलामा के चरणों में ही झुकेगा, अन्य किसी के नहीं।'' भोले के इन वाक्यों पर गुरुदेव प्रसन्न मुद्रा में भर गये और खींचकर भोलू को अपनी छाती से लगा लिया। अपनी दोनों बाहों में भरकर गुरुदेव ने उसे थप्पी दे देकर बार-बार कहा, ''ये हैं शिष्य, ऐसे होते हैं शिष्य, ये है निष्ठा, ऐसी होती है निष्ठा अपने गुरुदेव में, मेरा बच्चा, मेरा बच्चा, मेरा लल्ला, मेरा लल्ला।'' बस छाती से और कर कमलों से स्पर्श किया और ध्यानस्थ कर दिया। गुलामी से छुड़ाया, योगी बना डाला। तो ये था उदाहरण स्पर्श दीक्षा का। अतः स्पर्श में भी 'संकल्प शक्ति' का अतुलित समावेश है। एक लड़के को जो लगभग १०-१२ वर्ष का था, कोई गम्भीर रोग हो गया। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। उसके माता-पिता हमारे गुरु भाई थे। अतः बच्चे को लेकर सवाई आश्रम में लाये और महाराज जी के पावन श्री चरणों में लिटा दिया। महाराज जी को रोग सम्बन्धी सारी जानकारी भी दी। परन्तु महाराज जी ने कहा, ''लल्ला इसमें हम क्या कर सकते हैं ?'' महाराज जी का इतना कहना था कि बालक को क्रोध आ गया और बिना सोचे विचारे बोला, ''अच्छा ! आप कुछ नहीं कर सकते! तो कर भी फिर क्या सकते हैं आप ?'' बालक के इतना कहने पर उसके माता-पिता को बड़ी आत्मग्लानि हुई कि कितना भद्दा आचरण महाराज जी के साथ किया हमारी सन्तान ने। परन्तु महाराज जी खिल-खिलाकर हंस पड़े और बड़े ही लाड़-दुलार से उस बालक के सिर पर हाथ फेरने लगे कि अच्छा लल्ला ! मेरा मुन्ना, मेरा बच्चा, मेरा लल्ला, मात्र स्पर्श से ही उसे ठीक कर दिया और ठीक ही नहीं कर दिया, उसे वो मानसिक एकाग्रता दी, जो भारी तप करने पर मुश्किल से आती है। अस्तु, कहने का भाव प्रधान ये है कि 'संकल्प शक्ति' सिद्धों के प्रतिपल आचरण में कूट-कूट कर भरी है और 'संकल्प शक्ति' ही अनादि काल से योग को आलोकित करती आ रही है। अब आगे बढ़ें तो मंत्रदीक्षा में भी हम इसी शक्ति का संचार पूर्णपूरित पायेंगे। हमारी मासिक पत्रिका सिद्धयोग में भी समय-समय पर उदाहरण पढ़ने को मिलते हैं कि अमुक व्यक्ति की दीक्षा हुई और मंत्र कान में पड़ते ही शिष्य काफी समय तक ध्यानस्थ रहा। ऐसा ही एक अन्य उदाहरण हमारी आदरणीय गुरु बहिन योगिनी सरोज जी' का रहा। योगिनी सरोज जी भटियाणे की रहने वाली थी। अब उनका शरीर नहीं रहा। मंत्र दीक्षा होते ही ये ध्यान अवस्था में रहने लगी थी। कहाँ तक मंत्र दीक्षा के शक्तिपात का वर्णन

करूँ। हम तो अधिक जानते भी नहीं। फिर भी कई गुरु भाई-बहिनों को जानती हूँ, जो मंत्र दीक्षा होने पर ध्यान अवस्था में लीन रहने लगे। जिनको नहीं जानती उनका परिचय गुरुदेव की कृपा लीलाओं से सम्बन्धित पुस्तकों में तथा हमारी श्रद्धेय मासिक पत्रिका सिद्धयोग में समय-समय पर होता रहा। यहाँ तो मात्र 'संकल्प शक्ति' का योग में साधक गण व सिद्ध पुरुष के जीवन में क्या और कितना महान महत्व है, इस प्रकाश को उजागर किया जाने का प्रयत्न किया जा रहा है। अब आगे संकल्प दीक्षा की बात आती है। श्री प्रभु जी इसी दीक्षा का सर्वाधिक प्रयोग किया करते थे। श्री प्रभु जी को न स्पर्श की जरूरत पड़ती थी न देखने की न बोलने की न मंत्र की। फिर भी यदा-कदा ये सब दीक्षायें हुईं। परन्तु अधिक तरीका संकल्प दीक्षा का ही हुआ करता था। स्वामी मुलखराज जी की मंत्र दीक्षा नहीं हुई, मात्र कल्याण का संकल्प शिवम् के (श्रीप्रभु जी) मन में उठा तथा कल्याण हो गया। श्री गोपालानन्द जी को मिट्टी का ढेला दिया तथा संकल्प श्री प्रभु जी ने मन में उठाया। और कल्याण हो गया, लाखों दीक्षायें श्री प्रभु जी के द्वारा 'संकल्प दीक्षा' पर आधारित थी।

अन्य दीक्षाओं का भी मूलाधार 'संकल्प शक्ति' ही रही, जो सिद्धपुरुष अपने लायक शिष्यों पर या पीड़ित व दुःखी जनों पर प्रयोग किया करते हैं। हमें नाज है अपने दादागुरु देव व गुरुदेव पर जिन्होंने भू-भार हरण हेतु ही अवतार लिया। जब श्री प्रभु जी की लीलाओं का जो देखी, सुनी या पढ़ी हैं का ध्यान आता है तो उनका काल्पनिक चित्रण आँखों में ओझले-ओझल आँखें श्रद्धा पूरित अश्रुओं से नम हो जाती हैं। कण्ठ प्रेमातिरेक से अवरुद्ध हो जाता है और सहसा मन गुनगुनाता है-

प्रभु रामलाल तेरी लीला का, अन्दाज निराला देखा है।। प्रभु......
१. चाहे दुःख की घिरे चट्टानों में, या जीव फँसे तूफानों में।
पतवार को लेकर चलने का, अन्दाज निराला देखा है।। प्रभु......
२. जिसे जग ठुकराके चलता है, उसे आँचल तेरा मिलता है।
रेती में कमल खिलाने का, अन्दाज निराला देखा है।। प्रभु......
३. जहाँ कालिमा दुःख के काजल की, आशा नहीं सुख के बादल की।
वहाँ प्रेम सुधा बरसाने का, अन्दाज निराला देखा है।। प्रभु......
४. तेरे रुख से हवाएँ चलती हैं, हाथों की लकीरें बनती हैं।
वहाँ चाँद चार चमकाने का, अन्दाज निराला देखा है।। प्रभु......
५. जो शरणागत तेरी होते हैं, नहीं पाप का बोझा ढोते हैं।
पापों का धुआँ उड़ाने का, अन्दाज निराला देखा है।। प्रभु......
६. तेरी कृपा जिस पर होती है, वहाँ मौत भी वापस होती है।
कुदरत के लेख बदलने का, अन्दाज निराला देखा है।। प्रभु......

अतः हे श्रद्धालु जाग, अपने अन्दर कुछ ऐसे गुण पैदा कर, जिससे करुणासिन्धु का दिल पिघले और तुम्हारे अच्छा व लायक शिष्य बनने के संकल्प में श्री प्रभु जी व गुरुदेव जी का संकल्प बरसे

और कल्याण का द्वार खुल जाये। हे श्रद्धालु साधक! जाग, निन्दा छोड़, इधर-उधर की व्यर्थ भाग-दौड़ का सिलसिला त्याग, संकल्प जगाने को बाध्य कर दे कृपानिकेतन को। प्रभु ममता का असीम व अथाह सागर है। अपनी लायक बनने की संकल्प शक्ति से प्रभु जी की संकल्प शक्ति को अपने कल्याण के लिए विनीत भाव से प्रेरित कर। ज्ञान की अहम् चादर मत ओढ़, श्रद्धा का सहारा ले-

श्रद्धां देवा यजमाना वायु गोपा उपासते। (ऋ० १०/१५१/४)

अर्थात् श्रद्धा के साथ, श्रद्धा का सहारा लेकर विद्वान लोग, यज्ञ करने वाले, वायु में उड़ने वाले योगी-तपस्वी उस भगवान तक पहुँच जाते हैं।

अतः जो करता है, मत सोच कि तूने किया। तू कुछ नहीं रे पगले, सब कुछ नूरेहक है। दूब की तरह नम बन जायेगा तो करोड़ों जूतों तले कुचलने पर भी तेरा वजूद ज्यों का त्यों रहेगा। मैंने कुछ किया, ऐसा सोचने पर ही, स्वयं को गुनाहगार समझ स्वयं सजा तय कर, स्वयं भुगत। प्रभुजी को चाहता है, तो प्रभु को सजा देने का भी कष्ट न उठाने दे। इतना परिपक्व प्रेम दिल में उड़ेल कि मुख से निकले-

तेरा जमाल है, तेरा ख्याल है, तू है। मुझे ये फिक्रे ख्वाइश कहाँ कि क्या हूँ।

प्रभु जी मेरे हैं। ये बात इतनी गहन बिजली की तरह अन्दर दौड़ जाये कि अपनी बात ही ध्यान न रहे और ऐसा सोचते-सोचते ऐसा ही हो जायेगा।

यथाकारी यथाचारी तथा भवति। मनुष्य जैसा सोचता है, जैसा करता है वैसा ही हो जाता है। अतः शुभ संकल्पों को अपने अन्दर जगह दे। मत सोचने में उलझ कि दुनियाँ तेरे बारे में क्या कह रही है। बस सही राह पर अग्रसर हो। अंग्रेजी में किसी ने ठीक ही कहा है-

Don't think,, what others are thingking about you.
They are worry in thinking what you are thinking about them.

अर्थात् मत सोच कि दूसरे तेरे विषय में क्या सोच रहे हैं। वे तो इसी बात से चिन्तित हैं कि तुम उनके बारे में क्या सोच रहे हो।

अतः उत्तम श्रेणी के गुरुदेव पाकर उत्तम श्रेणी का साधक शिष्य बन। दुनिया की लगाई-बुझाई से, परनिन्दा तथा हर समय दोष दर्शन कर दोष बताने पर मुख खोलने पर सारी खटाई तुम पर ही और तेरे ही मुख में गिरेगी और तू ही मुसीबत में गिरेगा। कितनी सुन्दर बात कही गयी है। समझदारों को समझाने के लिए-

Even a fish would not get into trouble if she kept her mouth shut. अर्थात् एक मछली भी मुसीबत में न फंसती यदि वह अपना मुँह बंद रखती।

हम जैसा सोचते हैं वैसा ही दायरा हमें मिल जाता है। वेदों में कहा गया है-

'कृतं लोके पुरुषोऽभिजायते'।

अर्थात् मनुष्य अपने द्वारा निर्मित संसार में उत्पन्न होता है पशुता और दानवता में अन्तर समझकर व्यवहार कर, अन्यथा डूब जायेगा। कवि इकबाल ने ठीक ही कहा है-

दयारे-मग़रिब के रहने वालों ! खुदा की बस्ती दुकाँ नहीं है।
खरा जिसे तुम समझ रहे हो, वो अब जरे कमइयार होगा।।
तुम्हारी तहजीब अपने खंजर से, आप ही खुदकशी करेगी।
जो शाखे-नाजुक पे आशयाना बनेगा नापायदार होगा।।

साधक की सबसे बड़ी कमजोरी दूसरों को छोटा सिद्ध करना है। अतः संकल्प लें कि छोटा बताकर अपनी निगाह छोटी ना करें। अगर हमारी कोई बुराई करे भी तो प्रति उत्तर न करें।

रहे हयात में हिम्मत ही काम आती है। बड़ी निगाह बड़ा आदमी बनाती है। योगी बनना है तो दुर्भाषा का त्याग करना ही होगा, अहम की चादर उतारनी होगी। निन्दा नींद उड़ाती है, चुगली चैन चुराती है। ईर्ष्या ईंधन में जलाती है। अहम आहें देता है। अभिमान अभिशाप देता है। काम कमर तोड़ता है। क्रोध कुहन देता है। और जिसके अन्दर ये सभी अवगुण हों उसकी जीवन रूपी खटिया पर इस प्रकार खटमल पड़ते हैं कि सारा शरीर खुजली से बेचैन होता है। जैसा कि एक कहावत भी है-

मञ्जियाँ विच खटमल पै गये ने।
हथ खुरक खुरक के रह गये ने।।

अतः आज ही दुर्गुण त्यागने का संकल्प ले और यथानुसार आचरण करें तो संकल्प शक्ति का घेरा इस प्रकार किरणें फैलायेगा जैसे भानु की किरणें चारों ओर फैलती हैं। इधर साधक संकल्प पर दृढ़ होगा उधर सिद्ध संकल्प प्रभु जी की छाती में प्यार लायेगा। अर्थात् करुणासागर की एक लहर उफन कर साधक के शीश पर गिरेगी और सिद्ध संकल्प शक्ति का चमत्कार प्रस्फुटित होगा।

अतः लेख को विराम लेने के लिए सिर्फ इतना ही पाठकगण व इतना ही अपने लिए चाहती हूँ कि आओ हम सब गुरु भाई-बहिन तथा अन्य पाठकगण प्रभु प्रेम में इतने मस्त आलम में डूब जाये कि पता भी न रहे कि किनारा भी कोई नाम है। प्रेम के महासागर की मदिरा को इस प्रकार कण्ठ में उतारें कि स्वयं को होश न रहे और प्रभु जी, गुरुजी, प्रभुजी, गुरुजी ये ही नाम नशे में लबों पर रहें। स्व मिट जाये।

पीना हराम है, ना पिलाना हराम है।
पीने के बाद होश में आना हराम है।।

अतः आप सब एवं मैं इस प्रार्थना के साथ साधन रत हों-

''तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु''-वेद वाणी।।
हे ईश्वर ! मेरा मन शिव संकल्प वाला बने।

श्रीकृष्ण जन्म सद्शिक्षा के साथ

गतांक से आगे

हे माता! तुम दोनों के मन में पहले से ही पुत्र प्राप्ति की कामना विद्यमान थी जिसको लक्ष्य करके तुमने प्राणायाम जैसी कठोर साधना चित्त शुद्धि हेतु की। तुम्हारे अन्तःकरणों में प्राणायाम की साधना के फलस्वरूप मेरी निर्मल भक्ति की धाराऐं फूट पड़ीं। उसी भक्ति (चित्त की एकाग्रता) के द्वारा तुम दोनों ने मेरी प्रसन्नता के लिए मेरी उपासना आरम्भ कर दी ताकि मुझ से उत्तम संतान का वरदान ले सको।

विवेकवान सुतपाजी भलीभाँति यह जानते थे कि गर्भाधान से पूर्व ही गृहस्थों को, मनोवांछित श्रेष्ठ सन्तान हेतु सबके जन्मदाता परम्पिता परमेश्वर की पूरे मनोयोग से उपासना करनी चाहिए क्यों कि वह सबका पिता है उसी से समस्त संसार उत्पन्न है। वह सबका जन्मदाता है।

एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परम् दुष्करम्।
दिव्य वर्ष सहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः।।

अर्थात्–मुझमें चित्त लगाकर ऐसा परम् दुष्कर और घोर तप करते-करते देवताओं के बारह हजार वर्ष बीत गये।

हे माता ! तुम दोनों ने मुझे प्रसन्न करने के लिए देवताओं के बारह हजार वर्ष तक घनघोर तप किया।।

माता देवकी यह सुनकर बड़े आश्चर्य में पड़ गईं पूछने लगीं–

–हे सर्वभूतान्तरात्मा प्रभु! इतनी लम्बी उपासना में हमारा मन कैसे लग सका ? हमको आलस्य-प्रमाद ने क्यों नहीं घेरा ?

–हे माता ! ऐसा मेरी भक्ति से सम्भव हुआ। प्राणायाम की साधना से चित्त की अशुद्धियाँ दूर करके तुमने जो चित्त की एकाग्रता (मेरी भक्ति) प्राप्त की थी उस अपूर्व भक्ति का अवलम्बन लेकर ही तुम दोनों दीर्घकाल तक मेरी उपासना में मन लगा सके। चित्त शुद्धि हो जाने से रज व तम के विकार क्रोध व आलस्य-प्रमाद का तुम्हें दुःख नहीं था।

तत्वज्ञानी योगोपदेष्टा सद्गुरु अपने बच्चों को प्राणायाम की जटिलता से बचाते हुये, इष्ट में मन को लगाये रखने के लिए मंत्रजप फिर ध्यान, पुनः मंत्रजप पुनः ध्यान इसी क्रम में बढ़ाते हुये ध्यानाभ्यास में प्रगाढ़ता लाने की यह बहुत सरल पद्धति बतलाते हैं। इसका रहस्य यही है कि पहले मंत्रजप से जो चित्त को एकाग्रता प्राप्त होती है उसी एकाग्रता में ध्यान करने पर मन ध्येय पर भली भाँति ठहर जाता है। ऐसा नियमित अभ्यास करने पर गुरूभक्ति (एकाग्रता) दिन दूनी रात चौगनी बढ़ती है और ध्यान की उत्कृष्ट अवस्थाऐं प्राप्त होती हैं।

हरि स्वरूप परम् ईश्वर ने माता देवकी को अपने जन्म वृतान्त के विषय में आगे बताया–

हे माता ! उपासना के अन्तिम चरण में जब तुम भक्तिमय तीव्र मनोसंवेगों के साथ मेरे चित्त

को खींचने लगे तो मैं तुम्हारे निर्मल प्रेम में भर गया और तत्काल तुम्हारे उपासना स्थल की ओर दौड़ पड़ा किन्तु मुझे एक बात की चिन्ता थी कहीं तुम मुझमें अपने वर्तमान जन्म (पूर्वजन्म वाले) में ही मोक्ष प्राप्ति का वरदान न माँग बैठो।

तब माता देवकी ने भक्तिपूर्वक पूछा-

-हे प्रभुजी ! आप तो अकारण दयालु हैं। घोर प्राणायाम और उपासना के बाद भी क्या हम मोक्ष के अधिकारी नहीं थे ?

-हे माता! पूर्व कर्म संस्कारों का भुगतान आवश्यक होता है। चित्त को निर्मलता प्राप्त होने पर, चित्त की वासनाओं के कुसंस्कार कर्माशय में गहराई में बैठ जाते हैं किन्तु वे नष्ट नहीं होते। ध्यान जब समाधि में परिवर्तित होने लगता है तथा प्राणायाम सिद्ध हो जाता है तब समाधि की वे उच्चतम् स्थितियाँ प्राप्त होती हैं जिसमें साधकों के शुभाशुभ संस्कारों का भुगतान होता जाता है तब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और साधक योगी कहलाने के योग्य होता है। ऐसी स्थिति तुम्हारी साधना की नहीं थी।

अशुद्धियाँ दूर होने पर चित्त की निर्मलता के ज्ञान रूपी प्रकाश में वासनाओं के दब जाने से साधक को भ्रम होने लगता है कि अब मेरी सभी वासनाएँ, इच्छाएँ समाप्त हो चुकी हैं, मैं विगतराग हो चुका हूँ, योगी हो गया हूँ, मुझे जो पाना था पा लिया। इस प्रकार की कल्पनाओं से साधना में शिथिलता आते ही साधक आलसी होता जाता है। भ्रम वश स्वयं को सबका गुरु समझने लगता है। बाद में बुरी तरह गिरता है।

इस प्रकार के ज्ञानमय ईश्वर आनन्द की एकाग्रता प्राप्त होते ही 'मोक्ष' को कामना में साधक उलझ जाता है अपने पूर्व प्रयोजन पर वह विचार करना ही भूल जाता है। क्योंकि उसमें कामासक्ति ही नहीं रहती। तुम सन्तानोत्पत्ति का लक्ष्य भूलकर 'मोक्ष' प्राप्ति के लिए उतावले हो रहे थे किन्तु यह सम्भव नहीं था। पहला कारण तुम्हें किसी सिद्ध गुरू का सन्निध्य प्राप्त नहीं था, मोक्ष तक ले जाने में केवल वही समर्थ होते हैं। दूसरा कारण तुम्हारी कामनायें अभी शेष थीं जिनका भुगतान आवश्यक था। तीसरा कारण मोक्ष की राह पकड़ने पर ब्रह्माजी की आज्ञा (सन्तानोत्पत्ति हेतु) का उल्लंघन होता जो तुम्हारा धर्म नहीं था।

हे माता ! तुम लोगों का उस समय तक विषय भोगों से सम्पर्क भी नहीं था। तुम लोग जब भी भविष्य में कभी अपवित्र सांसारिक लोगों के संग में पड़ जाते तो अपनी निर्मलता (चित्त शुद्धि) व एकाग्रता को खोने लगते और चित्त के पुनः अपवित्र होते ही तुम्हारी दबी हुई वे वासनायें जिन्हें तुम योगी होने के भ्रम में समझे थे कि शमन हो चुकी हैं, पुनर्जीवित हो उठतीं और कठिन साधना से कमाई योगशक्ति तत्काल तुम्हारा साथ छोड़ जाती। मनमुखता से, बिना गुरु के अथवा गुरु की अवज्ञा करके अनेक साधक पतन की राह पकड़ ही लेते हैं।

मनमुख लोगों के लिए ही यह योग मार्ग कठिन है, सावधानी पूर्वक गुरुदेव की आज्ञा में बंधने पर यह उपलब्धि अत्यन्त सरल है।

हे माता ! तुम लोग मोक्ष माँगकर ब्रह्माजी की अवज्ञा करके अधर्म न कमालो इसलिए मैंने अपनी योगमाया के द्वारा तुम्हें ब्रह्माजी की आज्ञा की स्मृति कराई तब मेरी ही इच्छा से 'मोक्ष' को त्याग कर पुनः श्रेष्ठ सन्तान की कामना तुम्हारे मन में पैदा हो गई।

हे ममतामयी परम् योगिनी माता ! मैं तुम्हारी घोर तपस्या, श्रद्धा और प्रेम को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ। मैंने तुरन्त तुम दोनों को अपने सुमंगलकारी दिव्य आनन्द स्वरूप का दर्शन दिया। तुमने मुझे साष्टांग प्रणाम किया। मैंने आह्लादित मन से तुम दोनों को अपने हृदय से लगा लिया और पूछा–

हे देवी प्रश्नि और सुतपाजी ! मैं तुम्हारी उत्कृष्ट-निर्मल भक्ति पर अतिशय प्रसन्न हूँ बोलो तुम्हारी क्या अभिलाषा है ? मैं तुम्हारी इच्छानुसार अभी वरदान देता हूँ।

तब तुमने भक्तिभाव से भरे सुमधुर प्रिय वचनों में करबद्ध प्रार्थना की–हे दीनबन्धु! जगत के पालन कर्ता! आप सबके पिता हैं। आपके सर्व आनन्दों को देने वाला दर्शन कर लेने के बाद भी कोई तुच्छ सांसारिक सुखों की कामना करे वह आपके योग ऐश्वर्य की महिमा को न समझने वाला कोई अभागा दुर्मति ही होगा। किन्तु सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी की आज्ञा का पालन करना हमारा कर्तव्य है। वेदसम्मत विधि से गर्भाधान के द्वारा सन्तान प्राप्त करके उसे शिक्षा सदाचार से सुसंस्कारित करने पर ब्रह्माजी सन्तुष्ट होते हैं। ब्रह्माजी को सन्तुष्ट करना प्रत्येक गृहस्थी का कर्तव्य कर्म है। हमारे मन में 'पुत्र प्राप्ति' की कामना है। जिसे आप स्वयं भी जानते हैं।

हे माता ! यह सुनकर मैं मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ कि तुमने 'मोक्ष' नहीं पुत्र की कामना की है। इस प्रकार मेरी ही प्रेरणा से तुम्हारे मन में मोक्ष के स्थान पर सन्तान प्राप्ति की कामना पुनः पैदा हुई। यदि तुम लोग 'मोक्ष' चाहते तो मेरा संसार में धर्म की स्थापना करने का प्रयोजन कैसे सिद्ध होता ? जन्म तो मुझे तुम्हारी ही कोख से लेना था।

अजुष्ट ग्राम्य विषया वनपत्यौ च दम्पती।
न वव्राथेऽपवर्गं म मोहितौ मम मायया।।

उस समय तक विषय भोगों से तुम लोगों का कोई सम्बन्ध नहीं हुआ था। तुम्हारे कोई सन्तान भी नहीं थी। इसलिए मेरी माया से प्रेरित होकर तुमने मेरी प्रेरणा से 'मोक्ष' नहीं मांगा।

तब मैंने अति प्रसन्न होकर पूछा– 'कहो महात्मा सुतपाजी व माता प्रश्नि तुम्हें कैसा पुत्र चाहिए ? निः संकोच कहिए मैं अवश्य आपकी मनोइच्छा पूर्ण करूंगा यह मेरा वचन है।'

तुम ने प्रेममयी भक्ति से नित्य–निरन्तर अपने हृदयों में मेरी ही भावना की थी। तुम दोनों को मेरे सिवा और कुछ सूजता ही नहीं था। तब तुम दोनों ने मुझसे करबद्ध निवेदन किया–हे दीनबन्धु ! संसार में अब आपके अलावा अन्य किसी में भी हमारा राग नहीं रहा है हमें तो आप ही प्रिय हैं अतः हमारी प्रार्थना है कि आप हमें अपने ही जैसा पुत्र प्रदान करने का अनुग्रह करें।

प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया।
व्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः।।

अर्थात्–जब मैंने कहा कि 'तुम्हारी जो इच्छा हो मुझसे माँग लो, तो तुम लोगों ने मेरे जैसा पुत्र माँगा।

हे माता! मैं अब एक और परेशानी में पड़ गया, तुम्हारी अभिलाषानुसार मैंने अपनी तीन लोक सृष्टि का कोना-कोना छान मारा किन्तु कहीं मुझे अपने जैसा व्यक्ति नहीं मिला। मिलता भी कैसे ? मेरे समान गुण और स्वभाव वाला मैं त्रिलोकी में एक ही हूँ तब बहुत विचार करने के बाद मेरे मन में भावना बनी कि मैं स्वयं ही तुम्हारा पुत्र बन कर पृथ्वी पर मानव देह में जन्म लूँ ताकि मैं अपना प्रयोजन (पृथ्वी पर धर्म की भलीभाँति स्थापना) भी पूर्ण कर सकूँ। इस प्रकार मेरी माता ! मैंने तुम्हारे घर में जन्म लिया तुमने मुझे बड़े प्यार से पाला, मेरे पालन-पोषण में कितना कष्ट सहा ? मुझे सब कुछ याद है माता ! तुमने मेरे मन को कुविचार और दुर्भावनाओं से सदा बचाये रखा और स्वाध्याय-सत्संग की प्रेरणा दी। पिता से शिक्षा-दीक्षा की उचित व्यवस्थाएँ पाकर गुरु सेवा करके मैं संसार में 'प्रश्निगर्भ' नामक महापुरुष के रूप में जाना गया। मैंने संसार में अनेक पुरुषार्थ कर्म किये लोगों को धर्म करना सिखाया। यह मेरा पहला जन्म था जो मैंने तुम्हारी कोख से लिया था। तुम दोनों अपने दूसरे जन्म में ''अदिति'' तथा ''कश्यप'' नाम से जन्म लेकर संसार में प्रकट हुये। मेरा प्रयोजन अभी पूर्ण नहीं हुआ था इस दूसरे जन्म में भी मैंने तुमको अपनी माँ और कश्यप जी को पिता बनाया। तुम दोनों ने मेरे इस जन्म को भी सफल बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। तुम्हारे स्नेह दुलार व सुसंस्कारों से पोषित मैं 'उपेन्द्र' नाम से जाना गया किन्तु मेरा कद बहुत छोटा होने से संसार में 'वामन' नाम से प्रसिद्ध हुआ। मेरे महान कर्म-गुण-पुरुषार्थों से प्रभावित लोगों ने मुझे वामन भगवान के रूप में ईश्वर का अवतार जाना। मैंने इस जन्म मेंभी पूर्व जन्म की तरह धर्म पुनर्स्थापना करने के उद्देश्य से बहुत-बहुत पुरुषार्थ किया। भौतिक सुखों की विषयी निद्रा में सोते लोगों को जगाने का प्रयास किया।

अदृष्ट्वान्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम्।
अहं सुतो वामभवं प्रश्निगर्भ इति श्रुत।।
तयोर्वा पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात्।
उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः।।

अर्थात्–शील-स्वभाव उदारता आदि गुणों में मेरा जैसा दूसरा कोई न होने से प्रश्निगर्भा नामक मैं ही तुम्हारा पुत्र हुआ। पुनः अदिति व कश्यप नामक तुम्हारे दूसरे जन्म में मैं तुम्हारा 'उपेन्द्र' नाम से पुत्र हुआ और कद छोटा होने से 'वामन' नाम से सुविख्यात हुआ।

हे माता! अब तुम्हारे देवकी व वसुदेव नाम के इस वर्तमान जन्म में भी मैं तुम्हारा पुत्र बनकर प्रकट हुआ हूँ। कृष्णनाम के इस वर्तमान जन्म में मुझे बहुत कार्य करने हैं तुम देखना माँ, मैं अपनी योगमाया से, अनेकों लोक कल्याणकारी लीलाएँ करता हुआ दुष्टों का विनाश करूँगा, दीनजनों की, ईश्वर भक्तों की रक्षा करूँगा और धर्म की स्थापना करूँगा। धन और शक्ति में काफी उठ जाने से, लोग अपनी आध्यात्मिक शक्ति की उपेक्षा करके भौतिक बल पर व्यर्थ का अभिमान करके अपने

अहंकार को बढ़ा रहे हैं। घर-परिवारों में मानव मूल्यों का घोर पतन हो चुका है। मानसिक विचारों एवं अहंकृति पूर्ण व्यवहारों से प्रदूषित पारिवारिक व सामाजिक वातावरण में छोटे-छोटे बच्चों का भौतिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास कैसे सम्भव हो सकेगा ? स्वस्थ वातावरण में पले बहादुर-पराक्रमी, बुद्धिमान-उदार बच्चे ही पढ़ें होकर संसार की बिगड़ी हुइ स्थिति में सुधार कर सकते हैं।

प्रबल अहंकारी बुद्धि जो पत्थर की तरह ठोस होने से जड़त्व को प्राप्त हो जाती है ऐसी बुद्धि को भक्तिमय ईश्वरी ज्ञान के रस में नहीं गलाया जा सकता। जैसे 'पत्थर' के जड़त्व को विनिष्ट करने के लिए उसे हथौड़ों के प्रबल संघातों से फोड़ना ही पड़ता है उसी प्रकार अहंकारी जड़बुद्धि भी वचनों से नहीं मानती उसे भी फोड़ना ही पड़ता है। मैं संसार में व्याप्त इस **'अहंकारी मानसिक-बौद्धिक जड़त्व बल'** को विनिष्ट करने के लिए युद्ध की रचना करूँगा। जो संसार के इतिहास का सबसे महान और विशाल युद्ध होगा।

युद्ध की बात सुन कर माता देवकी का हृदय कांपने लगा-हे प्रभु ! आप तो दीनबन्धु परम् करुणानिधि, परम् शान्त और परम् धीर कहलाते हैं। युद्ध के स्थान पर शान्ति स्थापना का कोई अन्य रास्ता भी तो हो सकता है। क्या यह सम्भव नहीं ?

हे माता ! समय की माँग के अनुसार ही जब उपाय उपलब्ध होते हैं तभी सफलता मिलती है। अहंकार एक विष है और विष को निगलने अर्थात अहंकार को ग्रास करने हेतु भगवान सदाशिव जो सर्वशक्तिमान हैं सबके प्रभु हैं अपने जिन संस्कारी बालकों का उद्धार करने हेतु सद्गुरु सत्ता के रूप में संसार में प्रकट होते हैं। और अपने संस्कारी बच्चों का अहंकार ग्रास करके उसे मोक्ष का अधिकारी बनाते हैं। मैं स्वयं वही हूँ किन्तु मुझ साधारण ग्वाले को न तो कोई ईश्वर मानेगा और न गुरु। केवल मात्र पाण्डव मेरे स्वरूप को समझकर मुझ में श्रद्धा करेंगे और मेरी आज्ञाओं का पालन करते हुये चलेंगे। इस कृष्ण नाम की देह में विराजमान मैं सर्वशक्तिमान सबका प्रभु सदाशिव ही हूँ अतः मेरे द्वारा रचित युद्ध में जो भी मेरे अथवा मेरे कृपापात्रों (अर्जुन आदि) के द्वारा मारे जायेंगे वे सब मोक्ष को प्राप्त होंगे। जो जीवित बचेंगे वे भी धर्मानुकूल जीवन निर्वाह करके मेरा चिन्तन करते हुए मोक्ष को प्राप्त होंगे। हे माता ! जो मुझ से थोड़ा सा भी प्रेम कर लेंगे उनका तो कहना ही क्या ? गोपियाँ तो मेरे प्रेम में डूब कर मेरा हृदय ही बन जायेंगी। मैं परम्परागत गुरु तो नहीं रहूँगा किन्तु मेरी एक-एक लीला मानव जीवन के मूल्यों को सिखाने वाली किसी महान गुरु से कम नहीं होगी मेरी प्रत्येक लीला में मानव जीवन को सुखमय बनाकर जीने की अद्भुत कला छिपी है। जो मानव जीवन दर्शन के प्रत्येक पक्ष में अपने अनुपम सन्देशों उपदेशों को श्रद्धावान धर्म के जिज्ञासु लोगों के हृदयों में उसी प्रकार प्रतिष्ठित कर देगी जिस प्रकार सामर्थ्यवान गुरु अपने महा अज्ञानी-मूर्ख बच्चों में भी आध्यात्मिक ज्ञान की सद्प्रेरणाएँ प्रतिष्ठित कर देते हैं। जब मैं संसार से चला जाऊँगा तब अत्यन्त कठिन जीवन संघर्ष, अपमान-पराजय का महान दुःख उठाने के बाद मेरे प्रिय जन मेरे मार्ग का अनुसरण आज्ञा पालन करेंगे तब वे मेरा ईश्वर स्वरूप समझेंगे और विश्व गुरु

व जगद्गुरु के अलंकरण के साथ संसार में मेरा यशोगान करेंगे, मेरी लीलाओं को, मानव जीवन का अमृत समझकर स्थान-स्थान पर प्रचार करेंगे।

हे माता ! जैसे तुमने मुझे जन्म दिया है। संसार की हर माता पुत्र-पुत्रियों को जन्म देती है किन्तु वे अपनी सन्तान का तुम्हारी तरह पालन पोषण (आहार, स्वास्थ्य, स्नेह-दुलार, शिक्षा, संस्कार, संग, दीक्षा, सदाचार, पराक्रम, दयालुता, विनम्रता, आध्यात्मिकता आदि अनेक मानव जीवन को पूर्णता प्रदान करने वाले सभी पक्षों पर भलीभाँति ध्यान देकर) करने वाली नहीं होती। जब-जब यह भूल सामूहिक रूप से किसी भी देश में दोहरायी जाती है वह देश पराक्रम और भौतिक समृद्धि से तुरन्त खाली हो जाता है। निर्धन और पराक्रम-पौरुषहीन हो जाने से उसे अन्य बलवान देशों का गुलाम बनना पड़ता है। महान जीवनी शक्ति के प्रदाता उपर्युक्त सभी गुणों का विकास बच्चों में हो सके इसके लिए हे माता ! हर माता-पिता को जागरुकता व विवेक से अपनी सन्तानों का वैसे ही पालन पोषण करना चाहिए जैसा तुमने मेरा मेरे दोनों पूर्व जन्मों में किया।

संतानोत्पत्ति कोई शारीरिक मनोरंजन नहीं है यह एक महान उत्तरदायित्व है। सन्तान को संस्कारवान-चरित्रवान बनाने पर ही यह उत्तरदायित्व पूर्ण समझा जाता है। मेरा जन्म वृत्तान्त योग परक होते हुये माता-पिता व सन्तान से सम्बन्धित व्यावहारिक जगत की अनेक अनिवार्य रूप से पालनीय सूचनाऐं देता है। मेरे सभी लीला चरित्र, हे माता ! बड़े ही अनुपम-अनूठे होंगे किन्तु मुझे अपना 'जन्म लीला चरित्र' विशेष प्यारा है क्योंकि यह चरित्र बच्चों को महापुरुष बनने के सुन्दर विवेकसम्मत मार्ग का दर्शन कराता है। जीवन संघर्ष को सम करता है।

हे कल्याणमयी माता ! कोई भी बच्चा माँ के गर्भ से ही देव अथवा राक्षस पैदा नहीं होता वह तो कोरे कागज की भाँति एकदम निर्मल मन होता है प्रेम की मूर्ति होता है न मित्र को पहचानते हैं न शत्रु को, जो उसे प्यार से पुचकार ले बस उसका ही हो जाता है। बच्चों के बौद्धिक, मानसिक और शारीरिक क्रमिक विकास में, समय के साथ-साथ मानवीय सभ्यता सीखने के लिए उपर्युक्त वातावरण की तथा सुन्दर चरित्र निर्माण हेतु संग के लिए उत्कृष्ट चरित्रवानों की आवश्यकता होती है।

पारिवारिक, सामाजिक और भौगोलिक वातावरणों में भौगोलिक वातावरण एक प्राकृतिक व्यवस्था है किन्तु परिवार का वातावरण उसके सदस्यों पर तथा समाज का नागरिकों के गुण-स्वभाव तथा व्यवहार तथा रहन-सहन आदि पर निर्भर करता है। यदि पारिवारिक वातावरण प्रत्येक दृष्टि में उत्कृष्ट है तो ऐसे वातावरण में पला बच्चा आगे चलकर अच्छे समाज की सृष्टि करता है। कठिन से कठिन सामाजिक वातावरण अथवा भौगोलिक वातावरण क्यों न हो वह इनसे प्रभावित नहीं होता। पारिवारिक वातावरण में बिगड़े हुये बच्चों के नैतिक व स्वाभाविक दोषों के कारण सामाजिक व भौगोलिक वातावरण भी बदल जाते हैं। किसी भी बालक के लिए उसका परिवार ही उसकी प्रथम पाठशाला होती है जहाँ उसका स्वभाव एवं चरित्र सुविकसित होता है। अतः परिवार का वातावरण शान्तिमय, सदाचार व सज्जनता के महान गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए तथा बच्चों के गुणकर्म स्वभाव को सुसंस्कृत बनाने वाले साधनों से युक्त होना चाहिए।

इस कार्य के लिए सन्तानोत्पादन की क्रिया आरम्भ करने से पूर्व ही माता-पिता को अपने समस्त चारित्रिक दोषों-दुर्गुणों का शमन करते हुये अपने आचरण, व्यवहार एवं बोलचाल की शैली में भी उचित सुधार लाने की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए। समस्त सद्गुणों को अपने चरित्र में उतारने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए ताकि बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए उपर्युक्त पारिवारिक वातावरण का निर्माण हो सके।

बच्चों से अत्यधिक मोह करना माता-पिता के लिए घोर अपराध का विषय है। मोह करने वाला व्यक्ति अपने बच्चे का जीवन स्वयं छीन लेता है। मोह का दुष्प्रभाव सन्तान में दो प्रकार से दिखलायी पड़ता है। धनवानों की सन्तानों को यदि उनके माता-पिता से अत्यधिक लाड़-प्यार मिलता है तो भविष्य में अवश्य ही वे सन्तानें अपराध जगत में प्रवेश करती हैं। धनवान अभिवावक मोहवश अपने बच्चे को अनुशासन हीनता प्रदान कर देते हैं। अनुशासनहीनता में पले अशिष्ट 'असभ्य बिगड़े हुये बालकों को बिना सोचे-विचारे ये लोग मोहवश उनकी आवश्यकता से ज्यादा पैसा नित्य दैनिक खर्च के लिए देते हैं। धन के कारण स्कूल तथा मौहल्ले के गलत बच्चे उनके साथी हो जाते हैं और उसे अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों में लगा देते हैं। धन और समय का अपनी मौज-मस्तियों में दुरुपयोग करने वाले यही बच्चे धीरे-धीरे कुसंगति व अनैतिक कार्यों में पड़कर दैत्य-असुर (उग्रवादी-आतंकवादी) हो जाते हैं। कारण ईमानदारी-मेहनत से धनोपार्जन करके शान्तिपूर्वक जीवन निर्वाह करने का इन्हें अपने अभिवावकों से संस्कार ही प्राप्त नहीं होता। बच्चों के प्रारम्भिक जीवन का जो बहुमूल्य समय सद्गुणों के विकास में तथा जीवन यात्रा को सुन्दर ढंग से तय करने की कला सीखने में व्यतीत होना चाहिए था वह उपयोगी समय अज्ञानी माता-पिता की मोह आदि दुष्प्रवृत्ति के कारण जंगली हिंसक पशुओं की पाशविकता को संगठित करने में बीता। हे माता ! इसमें दोष किसका ? इन लोगों द्वारा किये जाने वाले अनेक प्रकार के हिंसक अपराधों के लिए दोषी, मेरी दृष्टि में सर्वप्रथम इनके माता-पिता व घर के सभी समझदार बड़े सदस्य ही होते हैं।

क्रमशः

शोक-संवेदना

परमपूज्य गुरुदेव के विशेष कृपापात्र झाँसी निवासी श्री ईश्वरी प्रसाद खड्डर की धर्मपत्नी श्रीमती सुधा खड्डर का स्वर्गवास गत १६ फरवरी २००२ को बम्बई में हो गया। सिद्धयोग परिवार दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए शोक संतप्त परिवार को धैर्य धारण करने की शक्ति प्रदान करने की श्री प्रभुजी से प्रार्थना करता है।

—संपादक

प्रकृति से अपना नाता तोड़कर परमात्मा से अपना नाता जोड़ो

ब्र० ओमप्रकाश, लखनऊ

इस संसार में मुख्यतया दो प्रकार के प्राणियों की सृष्टि है। प्रथम दैवीय तथा दूसरी आसुरी। जगत में ये ही दो प्रवृत्तियाँ व्याप रही हैं। इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों के लोगों में देवासुर संग्राम बाहर संसार में तथा मनुष्यों के शरीरों के अन्दर चलता रहता है। कभी दैवी वृत्ति आसुरी वृत्ति पर हावी होती है तो कभी आसुरी वृत्ति दैवी पर। संसार में कुछ लोग दैवी गुणों को संपति समझते हैं तो कुछ आसुरी गुणों को सम्पत्ति समझते हैं। और इन्हें बटोरने में लगे रहते हैं।

प्रकृति से नाता बनाये रखने से मनुष्य प्रकृति के सत रज और तम गुणों से बंधा रहता है। इन गुणों में बंधा रहना ही आसुरी प्रकृति है। प्रकृति से नाता तोड़कर जीव का परमात्मा से नाता जोड़ना ही दैवी प्रकृति है। इनमें दैवी प्रकृति सात्विक है; आसुरी राजसिक है राक्षसी तामसिक है। मनुष्यों की प्रकृति दैवी आसुरी तथा राक्षसी-इन भेदों के कारण तीन प्रकार की है। राक्षसी तथा आसुरी लगभग एक सी है। संसार की इन दो परस्पर-विरोधी धाराओं का विचार विश्व के हर धर्म में पाया जाता है। इसी को दैवासुर संग्राम नाम दिया गया है इसी को बाइबिल तथा कुरान में खुदा तथा शैतान के नाम से कहा है।

गीता में दैवी-संपदा के २६ गुण निम्न प्रकार के गिनाये हैं।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत।।

(गीता १६-१-२-३)

अर्थात् हे भारत ! दैवी प्रकृति के वो लोग हैं जिनमें निर्भयता अन्तः करण की शुद्धि ज्ञान और योग में निष्ठा, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्यागः शान्ति, दूसरों के दोष न ढूंढ़ना प्राणियों पर दया लोभ का न होना, स्वभाव में मृदुता, कोमलता, लज्जा शीलता, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्वेष न होना, अत्यन्त अभिमान न होना ये सब उस व्यक्ति के गुण हैं जो दैवी सम्पत्ति लेकर संसार में जन्म लेता है। अब आगे भगवान आसुरी सम्पत्ति के कुल ६ अवगुण बताते हैं। आसुरी प्रकृति के लोगों में यह ६ अवगुण पाये जाते हैं-

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम्।।

(गीता १६-४)

अर्थात् हे पार्थ ! दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, पारुष्य अज्ञान ये छः दुर्गण उस व्यक्ति के हैं जो आसुरी सम्पदा को लेकर संसार में जन्म लेते हैं। भगवान ने यहाँ व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र में दिखाई दे रहे दो प्रकार के आधारभूत विचारों की तरफ संकेत किया है। सद्गुण, दैवी संपदा मानव की उच्च प्रकृति दूसरी तरफ है; इन्हीं दोनों में परस्पर युद्ध संघर्ष चलता रहता है-शरीर और संसार में। मानव के व्यक्तिगत जीवन में भय, मलिनता, अज्ञान, दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध उसे असुर

बनाये रखते हैं इनका मुकाबिला करके उसे निर्भय शुद्ध, ज्ञानी, नम्र, प्रेममय होना है। यही दिव्य गुण है। इन्हीं दिव्य गुणों को पाकर वह प्रकृति से मुक्त होकर परमात्मा की तरफ ले जाने वाली राह पर चल सकता है। मनुष्य समाज सदा इन दुर्गुणों से आक्रान्त रहता है।

इन दैवी तथा आसुरी प्रकृति के परिणाम दो हैं मोक्ष और बन्धन। यथा-

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।।

(गीता १६-५)

दैवी संपद मोक्ष देने वाली और आसुरी संपद बन्धन में डालने वाली है। मूढ़-अज्ञानी लोग कुछ आसुरी गुणों को संपत समझते हैं और उन्हें बटोरने में लगे रहते हैं- दूसरे ज्ञानी-समझदार लोग दैवी गुणों को सम्पत्ति समझकर उसका संग्रह करते हैं।

मनुष्य प्रकृति के गुणों से (सत्व, रज, तम) से बंधा रहता है इनमें बंधे रहना ही आसुरी प्रकृति है। प्रकृति से नाता तोड़कर जीव का परमात्मा से नाता जोड़ना दैवी प्रकृति है। आसुरी प्रकृति का अर्थ है। प्रकृति के साथ अपने को घुला-मिला देना और दैवी प्रकृति का अर्थ है जीव का परमात्मा के साथ घुलमिल जाना। दैवीय प्रकृति के लोगों का स्वभाव होता है निर्भयता अन्तःकरण की शुद्धि ज्ञान और योग में निष्ठा, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्वेष का न होना अत्यन्त अभिमान न होना; और आसुरी प्रकृति के लोगों का स्वभाव होता है, दम, दर्प, अभिमान, क्रोध, पारुष्य, अज्ञान। ये आसुरी दुर्गुण हैं।

आसुरी प्रकृति के लोग न यह जानते हैं कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। उन्हें प्रवृत्ति निवृत्ति का ज्ञान नहीं उनमें न पवित्रता पायी जाती है न सदाचार पाया जाता है न सत्य, पाया जाता है। पवित्रता शारीरिक गुण है तथा सदाचार मानसिक गुण है। सत्य आध्यात्मिक गुण है। जिनके लिए भोग ही सर्वस्व है, भगवान नहीं। काम, क्रोध, लोभ ये तीन नरक में जीव को ले जाने वाले हैं। गीता में इन प्रकृति के तीनों गुणों की गति बताते हुए कहा है। ऊपर के लोकों को सत्व गुण है ये गुण जीव को ऊपर के लोकों में ले जाता है। मृत्यु लोक में ही जो जीवों को रखता है, वह है रजोगुण तथा अधोगति को देने वाला तमोगुण है।

इस संसार में दो प्रकार की संपद है एक तो भौतिक प्राकृतिक संपद धन आदि, तथा दूसरी है भगवान की संपदा राम नाम धन की। दैवी प्रकृति के लोग संसार के बन्धन से छूट जाते हैं। आसुरी प्रवृत्ति के ईश्वर का तिरस्कार करते हैं अपने को ही सब कुछ मानते हैं। धन दौलत को ही ये जमा करते रहते हैं। आसुरी प्रकृति वालों के नरक में जाने के तीन दरवाजे हैं- काम, क्रोध, लोभ, काम का अर्थ है वासना, इच्छा। विषयों के संग से कामना उत्पन्न होती है। हमारी प्रत्येक गति-विधि का मूल आधार कामना है, इच्छा है। संसार का प्रवाह ही कामना के स्रोत से बह रहा है। जब कामना अवरुद्ध होती है तब कामना, क्रोध का रूप धारण कर लेती है, अगर कामना बिना रुकावट के पूरी होती चली जाती है तब वह लोभ का रूप धारण कर लेती है। एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी इस प्रकार मनुष्य के मन में कामना उठती रहती है इस प्रकार 'काम' का एक सिरा 'क्रोध' है, तो दूसरा सिरा 'लोभ' है 'क्रोध' और लोभ दोनों 'काम' के ही दो रूप हैं।

सतयुग में समाज की सत्ता ब्राह्मणों के हाथ में थी द्वापर में क्षत्रियों के हाथ में सता रही, त्रेता में वैश्य युग आया तो वैश्यों के हाथ में सत्ता रही अब यह कलियुग है शूद्रों का युग है इसलिए आज सत्ता शूद्रों के हाथ में है। आसुरी प्रकृति का व्यक्ति कहता है कि सारी सत्ता प्रभुत्व मुझे

चाहिए। सारी दुनियाँ में मेरा शासन मेरी बात मानी जाय। इसी प्रकार हमारी संस्कृति उत्कृष्ट है। हिन्दू-मुस्लिम, ईसाई सभी महत्वाकांक्षी लोग अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ बताते हैं यही सब अहंकार दर्प, अभिमान, घमंड, आसुरी भाव हैं। संसार की सारी सम्पत्ति मेरी है। मैं प्राप्त करूँगा दूसरों को नहीं दूँगा। सत्व प्रधान देव हैं। रजोगुणी हैं वह असुर हैं। गीता का लक्ष्य आत्मा को नीचे से ऊपर ले जाना है। आत्मा को प्रकृति में से अर्थात् प्राकृत शरीर में निकाल कर परमात्मा में लाकर लय करना है। तीनों प्रकृति गुणों का त्याग ही गीता का मोक्ष है। इसी को **''निस्त्रैगुण्यों भवार्जुन''** या गुणातीत कहा है। जीव में और भगवान में यही अन्तर है कि भगवान के तो प्रकृति वश में है परन्तु यह जीव प्रकृति के वश में है। जैसे भगवान प्रकृति को अपने वश में किए हुए हैं वैसे ही जीव भी अपने को प्रकृति के वश में न समझे।

आसुरी प्रकृति वाला व्यक्ति संसार में भगवान को न मानकर अपने 'अहम्' को 'ईश्वरोहमा' मैं ही ईश्वर हूँ ऐसा मानता है। दैवी प्रकृति वाले भगवान को मानकर भगवान की उपासना करते हैं, तथा आसुरी प्रकृति वाले संसार की उपासना करते हैं।

जीव को चाहिए कि वह प्रकृति से नाता तोड़कर परमात्मा से अपना नाता जोड़े। अर्जुन को प्रकृति के इन तीनों ही गुणों का त्याग कर **''निस्त्रैगुण्यो भवार्जुनः''** की आज्ञा देते हैं। जो व्यक्ति रजोगुण की प्रधानता में शरीर त्यागता है तो वह कर्मों में आसक्त लोगों के यहाँ जन्म लेता है, और तमोगुण की अवस्था में जो शरीर छोड़ता है वह मूढ़ पापियों के यहाँ जन्म लेता है। और जो व्यक्ति सत्व गुण की अवस्था में शरीर को त्यागता है वह उत्तम ज्ञानियों के निर्मल लोकों को प्राप्त होता है।

मानव शरीर में जीव भी रहता है और परमात्मा भी रहता है परन्तु जीव तो देह में प्रकृति के गुणों से बंधा रहता है। प्रकृति के भोग को अपना भोग मानने लगता है। परमात्मा आत्म रूप से मानव शरीर में रहता हुआ भी देह से अलग द्रष्टा बना रहता है। जीव को भी द्रष्टा बनना है। जीव की मुक्ति का अर्थ यही है कि वह परमात्मा की तरह मानवदेह में रहता हुआ भी अपने को उससे (प्रकृति) से अलग समझे जब जीव भी अपने को परमात्मा की तरह देह से अलग समझने लगता है तब वह परमात्मा के साधर्म्य में पहुँच जाता है।

मनुष्य देह का जितना भी व्यापार है यह प्रकृति कर रही है प्रकृति ही कर्ता भोक्ता है; आत्मा नहीं। तमोगुण मलिन है, रजोगुण पूरी तरह मलिन नहीं; कर्म करने की इच्छा रजोगुण से पैदा होती है। सत्व गुण निर्मल है। सत्व गुण का पहला दोष है अहंकार अभिमान है, दूसरा दोष शुभ कर्मों में आसक्ति आलस्य-प्रमाद, नींद यह जीवों को आलस्य-प्रमाद में बाँध लेता है। रजोगुण के प्रधान लक्षण हैं, तृष्णा तथा कर्म नाना प्रकार के कर्म करने की इच्छा, तृष्णा, लालसा से यह गुण बाँध लेते हैं। सत्व गुणी समझने लगता है कि उसने वह आत्म प्रसाद पाया जो किसी के पास नहीं है यह घमंड ही सत्व गुणी को ले डूबता है। सत्व गुणी व्यक्ति शुभ गुणों में इतना ऐसा आसक्त हो जाता है कि वह भी उसके सुख-दुःख के कारण बनने लगते हैं। अतः गीता का अन्तिम लक्ष्य इस सत्व गुण को भी जीतना है, क्योंकि यह भी प्रकृति का ही गुण है जबकि सत्व गुण तो उपादेय है लेकिन, अहंकार, अभिमान घमंड इसके दोष हैं। अतः इसको भी जीतना आवश्यक है। रजोगुण से तमोगुण को जीते शारीरिक श्रम करके फिर सतोगुण के द्वारा रजोगुण पर विजय प्राप्त करें। अपनी इच्छा कामनाओं से प्रेरित कर्म न करके भगवत इच्छा से कर्म करें। सबको इच्छा का त्याग करें। इस प्रकार तमोगुण से रजोगुण और रजोगुण से सत्व गुण के द्वारा विजय प्राप्त करके तीनों गुणों को त्याग कर गुणातीत होना ही गीता का लक्ष्य है।

***

हम तुम्हें बुलाते हैं !

डा० कृष्णवीर सिंह तोमर
धरैरा (आगरा)

आजाओ प्रभु रामलाल, हम तुम्हें बुलाते हैं।।
योग-योगेश्वर, सिद्धेश्वर तेरी, महिमा गाते हैं।।

तुमहीं प्रभुजी, तुम ही गुरुजी, तुम शंकर कैलाशी।
आकर हम को दर्शन देदो, ओ घट-घट के वासी।
सिद्धगुफा तेरी तपोस्थली, हम पूजन को आते हैं।
योग-योगेश्वर सिद्धेश्वर तेरी.........।।१।।

श्री गण्डाराम घर प्रगटभये, श्री भागवन्ती सी मायी।
मधुमास मध्यान्ह काल, राम-नवमी, प्रभु को भायी।।
दौड़-दौड़ नर-नारी आये, मिल मंगल-मोद मनाते हैं।
योग-योगेश्वर सिद्धेश्वर तेरी.........।।२।।

अमृतसर प्रभु जन्म लियो, त्रिलोकी वहाँ पर धाये हैं।
ब्रह्मा, विष्णु सभी देवता, दर्शन करने आये हैं।।
बालरूप प्रभु के दर्शन कर, जीवन सफल बनाते हैं।
योग-योगेश्वर, सिद्धेश्वर तेरी.........।।३।।

पण्डितजी ने श्री प्रभुजी के, ज्योतिष गणित लगाये हैं।
बने एक दिन योगी राजा, ऐसे वचन सुनाये हैं।।
ज्योतिषियों का स्वामी होगा, ऐसे वे फरमाते हैं।
योग-योगेश्वर सिद्धेश्वर तेरी.........।।४।।

शिशु अवस्था में ही प्रभु ने, चमत्कार एक कियो।
अभिलाषा थी बुढ़िया माँकी, दर्शन उसको दियो।।
रोग मुक्त आशिष दीनी, देव पुष्प बरसाते हैं।
योग-योगेश्वर, सिद्धेश्वर तेरी.........।।५।।

पायी किशोरावस्था प्रभु ने, मात-पिता घबड़ाये हैं,
चला न जाय जंगल को सुत, यों सोच के ब्याह रचाये हैं।।
वरनी सुशीला, वर श्री प्रभु जी, लखि कामदेव सकुचाते हैं।
योग-योगेश्वर सिद्धेश्वर तेरी.........।।६।।

लगा न मन गृहस्थी में, तज कर घर, प्रभु भागे।
मात-पिता अरु भाई-बहिन, घर के सम्बन्धी त्यागे।।
कष्ट उठाये जंगल-जंगल फिर महाप्रभुजी मिल जाते हैं।
योग-योगेश्वर सिद्धेश्वर तेरी.........।।७।।

हुए पारंगत प्रभुजी योग में, महाप्रभु ने आशिष दीना।
बहु भक्तों को योगी बना, कल्याण विश्व का कीना।।
'कृष्ण' संग सब भाई बहिन, चरणों में शीश झुकाते हैं।
योग-योगेश्वर सिद्धेश्वर तेरी.........।।८।।

साधना में श्रद्धा का महत्व

रजनी शर्मा, (आगरा)

साधक को अपने आत्म कल्याण के लिए सर्वप्रथम अपने में भरपूर श्रद्धा का समावेश करना चाहिये। यदि साधक में लेशमात्र भी श्रद्धा की कमी है तो साधक अपने साधना के सफर को पूरी तरह से तय नहीं कर सकता और वह अपने मार्ग से हठ भी सकता है। गुरुदेव के बताए मन्त्र का जाप करना और उनका ध्यान करना ही साधक का परम कर्तव्य है। इसीलिए साधक को सदैव गुरुदेव के बताए मार्ग का अनुसरण करना चाहिए और साधना को तत्परता पूर्वक करना चाहिए। साधक बिना श्रद्धा के ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि-

'श्रद्धावान लभते ज्ञानं'

'श्रद्धावान लभते ज्ञानं' को ध्यान में रखकर साधक को श्रद्धावान बनना चाहिए। श्रद्धावान बनने के वे सभी मार्ग खोज निकालने चाहिए जिनसे व्यक्ति पूर्ण श्रद्धावान बनता है। मनीषियों के मतानुसार गुरुदेव के वचनों का पालन करना उनका निरन्तर चिन्तन करना, गुरुदेव में पूर्ण विश्वास करना' साधना में प्रमाद न करना इत्यादि। पूर्ण श्रद्धा ही वह साधन है जो साधक को उसकी साधना का सफर तय करा सकती है। कहा भी गया है कि श्रद्धा योगी की माँ की तरह रक्षा करती है श्रद्धा के माध्यम से ही साधक योग में प्रवेश करता है। क्योंकि यदि साधक की गुरुदेव में पूर्ण श्रद्धा होगी तो वह गुरुदेव के वचनों का पूर्णरूपेण श्रद्धा पूर्ण पालन करेगा। और पालन करेगा तो वह निश्चित ही योग में प्रवेश करेगा अर्थात् गुरुदेव की कृपा को प्राप्त करेगा और वह पथभ्रष्ट होने से बच जायेगा। अगर साधक गुरुदेव के वचनों में लेशमात्र भी संशय करता है तो उसका पथभ्रष्ट होना निश्चित है-

अखिल लोकपावन भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि-

अज्ञश्च अश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो, न सुखं संशयात्मनः।।

अर्थात् जो गुरुदेव तथा साधना में श्रद्धा नहीं रखता वह सदा संशयग्रस्त रहा करता है। और अपना यह लोक और परलोक दोनों बिगाड़ बैठता है।

अतः गन्धर्व का उपदेश है-

'यस्य भक्तिर्गुरोर्नित्यं वर्तते देववत् प्रिये।'

अर्थात् जिसकी श्री गुरुदेव में ईश्वर के समान सर्वदा भक्ति बनी रहती है। उसके सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्री राम चरितमानस में लिखा है-

जे गुरुपद अंबुज अनुरागी।
ते लोकहुँ वेदहुँ बड़भागी।।

संसार और वेदों में वही-वही सबसे अधिक भाग्यशाली माना गया है, जो गुरुदेव के चरण कमलों का अनुरागी है। रहीमदास जी के अनुसार-

प्रीतम छबि नैनन बसी। पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आपु फिरि जाय।।

साधक को गुरुदेव में इतनी श्रद्धा रखनी चाहिए कि गुरुदेव के अलावा कोई और छवि हृदय में न आये। एक विश्रुत महात्मा के अनुसार एक सच्चे साधक में गुरुदेव के प्रति तीन बातों का होना। आवश्यक है। १. गुरुदेव को भगवान के रूप में देखना २. गुरुदेव से प्रवाहित होने वाले भगवत् ज्ञान को स्वीकार करना तथा ३. गुरुदेव की प्रत्येक क्रिया का लीला के रूप में प्रतीत होना। यदि साधक में इन तीनों में से एक की भी कमी है तो समझ लेना चाहिए कि उसका गुरुकरण अभी हुआ ही नहीं। ऐसा साधक अपने साधना के सफर को कभी भी पूरा नहीं कर सकता। इसीलिए साधक को याद रखना चाहिए कि-

न गुरोरधिकं तत्वं, न गुरोरधिकं समरेत।
गुरुज्ञानात्परं तत्वं, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अर्थात् गुरुदेव से बढ़कर कोई तत्व नहीं है। न गुरुदेव से बढ़कर कोई तप है। गुरु के ज्ञान से परम तत्व का ज्ञान होता है। उस गुरुदेव को नमस्कार है।

गुरु भक्ति सदा कुर्यात श्रेयसे भूयसे नरः।।

अर्थात् अपना भूरि-भूरि कल्याण चाहने वाले को सर्वदा गुरु भक्ति करनी चाहिये। साधक की श्रद्धा ही उसकी शक्ति है और उसका विश्वास ही शिव अर्थात् कल्याण है। जय गुरुदेव !

***

युक्त्वाय मनसा देवान्सुवर्यतो धिया दिवम्।
बृहज्ज्योति करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् २/३

वे सबको उत्पन्न करने वाले परमेश्वर मन और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं को जो स्वर्ग आदि लोकों में और आकाश में विचरने वाले तथा बड़ा भारी प्रकाश फैलाने वाले हैं, हमारे मन और बुद्धि से संयुक्त करके हमें प्रकाश प्रदान करने के लिए प्रेरणा करें, ताकि हम उन परमेश्वर का साक्षात् करने के लिए ध्यान करने में समर्थ हों। हमारे मन-बुद्धि और इन्द्रियों में प्रकाश फैला रहे। निद्रा, आलस्य और अकर्मण्यता आदि दोष हमारे ध्यान में विघ्न न कर सकें।

चेतावनी

भूपेन्द्र 'अंकुश' जलेसर

अन्दर गूंजे आवाज यही, गुरुदेव हरे, गुरुदेव हरे।
बाहर निकलें अल्फाज़ यही, गुरुदेव हरे, गुरुदेव हरे।।
गुरु की किरपा का इच्छुक तू।
गुरु के प्रसाद का भिक्षुक तू।।
अपना ले तब अन्दाज यही, गुरुदेव हरे, गुरुदेव हरे।।
यदि जोड़ा है गुरु से नाता।
गुरु दर्शन को आता जाता।
फिर तो तेरा काम काज यही, गुरुदेव हरे, गुरुदेव हरे।
या सन्ध्या हो या भोर रहे।
सद्गुरु की उठति हिलोर रहे।।
भव-सागर-सेतु, जहाज यही, गुरुदेव हरे, गुरुदेव हरे।
श्रद्धा विश्वास गढ़ाये जा।
सेवा अभ्यास बढ़ाये जा।।
भुक्ति-मुक्ति का राज यही, गुरुदेव हरे, गुरुदेव हरे।।
पकड़ी गुरुमंत्र की यदि डोरी।
हर रोज दिवाली है होरी।।
प्रभु दर्शन की अग्गाज यही, गुरुदेव हरे, गुरुदेव हरे।।

प्रभुजी ने प्रेतबाधा से मुक्ति दिलाई

सुदर्शन कुमार अंगारिया (कांगड़ा)

मैं यह लेख सन् १९९९ के अन्त में लिखना चाहता था; लेकिन अब तक नहीं लिख सका। इसको क्या समझूँ कि मुझ पर आज दिन तक सदाशिव बाबा महाप्रभु श्री रामलालजी या सतगुरु देव भगवान योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी की कृपा न हो सकी ऐसा लगता है कि इन्सान पूर्वसंस्कार वश भी विवश हो जाता है। जब समय अनुकूल आता है, तो परिस्थितियाँ स्वयं ही प्रेरणा का स्रोत बन जाती है। मैंने सोचा कि कई मेरे जैसे तुच्छ इंसान योगमार्ग पर बहुत निकट आकर भी रास्ता भटक कर अपने लक्ष्य से भटक जाते हैं इसलिये मेरे जैसे उन लोगों को फिर से संस्था की प्रति यदि मैं उनका दुबारा समर्पण भाव व दृढ़ निश्चय उनके जीवन में इस लेख के माध्यम से जगा पाऊँ तो मैं अपने आप को धन्य समझूंगा। यह लेख लिखते समय मेरी लेखनी बड़ी तीव्र गति से स्वयं ही चल रही है ऐसा लग रहा है जैसे महाप्रभु जी स्वयं मेरी लेखनी को चला रहे हैं।

१ नवम्बर २००१ को दोपहर पश्चात् का समय था उस दिन श्री पी० के० पुरी जी के सुपुत्र का विवाह था। मैं अपनी पत्नी सहित स्वामी विजयपुरी जी के प्रभु दरबार मैंने आचार्य भूपेन्द्र झा के समक्ष यह फरियाद की, कि मैं एक लेख लिखना चाहता हूँ परन्तु हिम्मत नहीं जुटा पा रहा हूँ, महाप्रभु जी के आशीर्वाद से श्री झा साहिब ने कहा कि आप लिखें। उसके पश्चात् भी मैं कई उलझनों में फँसा रहा और आज यह लेख लिखने में सक्षम हो सका हूँ! आशा करता हूँ कि इससे भक्तजनों में महाप्रभु की अपार कृपाओं के ऊपर श्रद्धा एवं विश्वास दृढ़ हो सकेगा।

यह घटना आप बीती सौ प्रतिशत सत्य है, मैं सुदर्शन कुमार अंगारिया बतौर अतिरिक्त सहायक अभियन्ता सिंचाई एवं जनस्वास्थ्य उपमण्डल डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद मैडिकल कालिज में कार्यरत हूँ जो कि "काँगड़ा सिद्धयोग साधना समिति" से लगभग ५ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

यह घटना सन् १९९९ की है, २५ अगस्त १९९९ को मेरी छोटी बहन रविकान्ता मेरे घर ऊपर ली बड़ोल (दाड़ी) धर्मशाला (हिमालय प्रदेश) में मुझे २६ अगस्त को राखी बाँधने के लिये आई थी किन्तु हम उन्हें नहीं मिल पाए। क्योंकि मैं अपने परिवार सहित अपने गाँव अटवालादाई गया था, मुझे घर आने पर पता चला कि मेरी बहन धर्मशाला से वापिस अपने घर मैंझा (पालमपुर) आ गई है। दूसरे दिन हमें वापिस धर्मशाला आना था सोचा कि उनसे मिलते चलें जब हम उसके घर पहुँचे तो पता चला कि वह बीमार हो गई है। तथा भूतप्रेत का साया उस पर है। वह किसी से बात नहीं कर रही थी। जैसे ही मैं उसके पास बैठा तो उसने कहा कि गुग्गा मन्दिर कल सुबह ७.०० बजे आरती से पहले पहुँचना है मुझे ले जाना, यह मन्दिर उसके गाँव से ९-१० किलोमीटर की दूरी पर है जहाँ पर जादू-टोने, व भूतप्रेतों से पीड़ित व्यक्ति ठीक होते हैं। मन्दिर सलोह में पहुँचा दिया वह मन्दिर जिसकी पुजारिन मेरी सगी बुआजी हैं। मन्दिर उन्हीं के नाम से है जहाँ हजारों ऐसे रोगी ठीक होते हैं। वहाँ पर गुग्गा जी से अरदास की कि मेरी बहन को एक सप्ताह में कुशल मंगल करके घर भेज देना। हुआ भी ऐसा ही वह शीघ्र ही स्वस्थ होकर ५ सितम्बर को उसी आटो रिक्शा में बैठकर मेरे साथ घर आ गई। साथ में शेषनागजी भी संग चलते रहे मैंने उनके साक्षात् दर्शन भी किये। वैसे वह ४ सितम्बर गुग्गा नवम्बीं वाले दिन ही ठीक हो गई थी। रविवार को घर आने के पश्चात् तीसरे

ही दिन यानि कि मंगलवार की रात को वह पुनः बीमार हो गई। जो लोग उनके पीछे लगे थे उन्होंने सोचा कि यह इतनी जल्दी ठीक हो गई जहाँ पर महीनों लगते हैं और फिर मेरी बहन की स्थिति पागलों जैसी हो गई। कभी अपने अंगूठे से खून निकाला, कभी नग्न अवस्था में तपस्या तो कभी सारे घर का सामान इधर-उधर कर दिया। मुझे उसी दिन उनकी देवरानी श्रीमति अनिता का फोन आया कि बहनजी बहुत ज्यादा बीमार हैं आप यहाँ आओ तथा इनका कुछ करो। अपने आप को कमरे में बंद कर लिया है और न जाने क्या कर ले शीघ्र ही आ जाओ। किसी ने मुझे बताया कि मटौर गाँव में भी एक महिला जो कि ''बाबा बड़भाग सिंह'' की पुजारिन इस प्रकार के मरीजों को ठीक करती है। मैं पहले वहाँ गया वहाँ पर सारा हाल सुनाया व अमृत जल व इलायची लेकर उनके घर की तरफ चल पड़ा मैं वहाँ पहुँचा। मेरी बहन दरवाजा बन्द करके बैठी हुई थी। किसी से मिल नहीं रही थी। मुझे कहा क्यों आए हो वापिस जाओ, मैं अपने साथ महाप्रभु श्री रामलाल व श्री चन्द्रमोहन महाराज के स्वरूप भी अपने घर से साथ ले गया था। क्या मालूम कि यह प्रेरणा उन्हीं से मिली। मैंने अपने योग मन्दिर कांगड़ा में भी प्रार्थना की कि प्रभु जी मेरी बहन को शीघ्र स्वस्थ कर देना, क्योंकि मेरे जीजाजी फैजाबाद में आर्मी में जे.सी.ओ. के पद पर कार्यरत हैं। बच्चे छोटे-छोटे से व उनको देखने वाला कोई नहीं है। मुझे उसके ऐसा कहने पर कि वापिस जाओ बहुत गुस्सा आया तथा मैंने जरा कड़े शब्दों का प्रयोग किया कि क्या नाटक कर रही है ? दरवाजा खोलो मैं भी देखूँ क्या चीज है, क्या हो रहा है, परेशान कर रहा है। मैंने नौकरी भी करनी है या तेरे घर के ही चक्कर काटने हैं। लेकिन उसने दरवाजा नहीं खोला और अन्दर से ही आवाज लगाई कि जो भी सामान लाए हो मेरी देवरानी के पास दे दो मैं बाद में उसके ऊपर आचरण कर लूँगी। मैंने अपनी बहन का कहा माना और अपनी जिद् छोड़कर बाहर से बोला कि मैं अमृतजल बाबा बड़भाग सिंह जी का लाया हूँ इलायची चबा कर जल पी लेना और प्रभु राम लाल जी के स्वरूप अपने पूजा के स्थान पर रख लेना और उन्हें सुबह व शाम को धूपबत्ती कर के अपने स्वस्थ होने की अरदास भी करते रहना और जब चलने की स्थिति में हो तो मेरे पास आ जाना उसकी देवरानी को सब कुछ समझाकर मैं वापिस धर्मशाला अपने घर आ गया।

उसके तीसरे दिन प्रभु जी की प्रेरणा से मेरी बहन मेरे पास धर्मशाला आ गई। मैंने उन्हें तीन दिनों तक पूजा के कमरे में विधिपूर्वक प्रभु जी की पूजा अर्चना की और प्रभु जी के मन्त्रित जल से उनकी आँखों में जोर से छीटें लगाए तो क्षण भर में ही आँखों का झपकना आरम्भ हो गया जबकि उनकी ही जुबानी उनकी आँखें ४-५ महीनों से पथरा सी गई थी। पलकें झुकने का नाम नहीं लेती थी। दाँत पर जब दिव्य आरती के पश्चात् दोबारा छीटें लगाए तो उनका आगे वाला दाँत जो कि पिछले ७-८ वर्षों से बाहर की ओर निकला हुआ था, अपनी सही स्थिति पर आ गया। मेरी बहन बहुत खुश रहने लगी। जब मैंने उन्हें बताया कि यह चमत्कार महाप्रभु जी की अद्भुत महिमा का है पता नहीं प्रभु जी कब किस पर कृपा कर दें इसका कोई पता नहीं होता, वह इतनी प्रभावित हुई कि सुबह और शाम मेरे साथ प्रतिदिन प्रभु जी की दिव्य आरती करने लगीं। और उनका ध्यान भी लगने लगा और उन्होंने ध्यान में देखा कि आपके घर में बड़ी दिव्य आरती होती है आरती के समय सभी देवी, देवता वहाँ पर उपस्थित होते हैं।

जब मैं एक दिन अपनी बहन के साथ सायंकाल की दिव्य आरती में मस्त था तो मैंने देखा कि

श्री कृष्ण भगवान जी का सुदर्शन चक्र हमारी पूजा स्थान से गया और मेरी बहन के गाँव में एक अन्धेरे से गुफा नुमा रास्ते की तरफ बढ़ा और उसने वहाँ जादू का समूचा जाल काट कर रख दिया। जब मैंने अपनी बहन से पूछा कि यह गुफानुमा अन्धेरा सा रास्ता किधर जाता है तो उसने कहा कि जिन लोगों का किया कराया है (यानि कि जादू टोना करने वालों) यह रास्ता उसी ओर जाता है मेरे मुख से यह शब्द निकले कि तुम्हारा अनिष्ट चाहने वाले का सर्वनाश होने वाला है। एक सप्ताह के उपरान्त वह अपने घर चली गई। हुआ भी यूँ कि वह व्यक्ति इस दुनियाँ से सदा के लिये अलविदा कह गया और इस घटना के १५ दिनों बाद मेरी बहन मेरे पास धर्मशाला आई और कहने लगी कि महाप्रभु श्री राम लाल जी ने मुझे स्वप्न में कहा है कि अब मेरे भक्त के पास इन स्वरूपों को लौटा दो। आपका कार्य सम्पन्न हो चुका है और साथ यह भी कहा कि जब तुम्हारा भाई इस दिव्य आरती को करता है तो यह आरती तुम्हारे पास भी और तुम्हारे भाई के पैतृक गाँव वाले घर में भी पहुँच जाती है और रक्षा करती है, तुम्हारे घर पर खान-पान की शुद्धि नहीं है और न ही यह संस्कार वश छुट सकते हैं। उपरोक्त संदेश स्वयं महाप्रभु ने मेरी बहन को स्वप्न में दिये थे। महाप्रभु जी के आदेशानुसार मेरी बहन प्रभुजी के स्वरूप लौटा गई और अब वह बिलकुल स्वस्थ है। उसे हाई ब्लड प्रैसर था उसको स्थिर करने के लिये उनके शरीर से ब्लड भी निकालना पड़ता था और मोटापे से भी ग्रस्त थी अब सब सामान्य है आजकल फैजाबाद गई हुई है।

तो यह रही महाप्रभु जी की विचित्र लीला और प्रत्यक्ष दुःखों का निवारण प्रभु जी किसी न किसी को माध्यम बनाकर अपने भक्तों का कार्य सम्पन्न करवा देते हैं। जब मैं स्वामी विजयपुरी और उनकी संगत के संग जून २००० में ऋषिकेश योग साधना आश्रम में गया तो मुझे सुश्री ऊमा बहन जी के यह शब्द घर कर गये कि महाप्रभु श्री रामलाजी व योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी के स्वरूपों को केवल तस्वीर या फोटो ही न समझें, जब इन स्वरूपों की पूजा होने लगती है तो यह तस्वीर, तस्वीर नहीं रह जाती बल्कि इनमें महाप्रभु जी साक्षात् विराजमान हो जाते हैं। उपरोक्त धारणा मेरी बहन के साथ हुए घटनाक्रम की पुष्टि करती है जो शब्द सुश्री ऊमा बहन जी ने कहे वह शतप्रतिशत सत्य सिद्ध हुये हैं और उन्हें देखने समझने के लिये दिव्य चक्षुओं का होना अनिवार्य है।

ऐसे ही शब्द दिसम्बर २००० में "सिद्धयोग साधना समिति" कांगड़ा के शिविर में आचार्य चन्द्रहास जी ने कहे थे कि सिद्धयोग में समर्पित व्यक्ति के अन्दर महाप्रभु जी इतनी शक्ति प्रदान कर देते हैं कि वह व्यक्ति किसी भी क्षण, किसी भी वक्त अपने रिश्तेदारों, दोस्तों व स्वयं पर आई घोर विपत्तियों का निवारण कर सकता है। और जाने अनजाने में अनेकों लोगों का कल्याण कर सकता है। असम्भव को सम्भव भी करके दिखा देता है। लेकिन इस मार्ग में एक दिव्य पर्दा पड़ा रहता है किसी को वास्तव में पता ही नहीं होता कि उसमें इतनी शक्ति है अगर यह पता चल जाए तो इन्सान अहंकार वश अनजाने में शक्ति का दुरुपयोग भी कर सकता है। इस दृष्टांत से पाठकों को समझ आ ही गया होगा कि महाप्रभु जी की शक्तियाँ अपरम्पार हैं और इसका ओर-छोर आज तक कोई नहीं पा सका है अगर महाप्रभु जी ने इजाजत दी तो दूसरी आपबीती घटना का जिक्र दूसरे लेख में करूँगा। यह सब गुरुदेव की कृपा से ही सम्भव हुआ है। सबके तारणहार को मेरा शत-शत, कोटि-कोटि प्रणाम !

***

अकाल मृत्यु से कमला देवी की रक्षा

प्रेषक–केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

अहैतुकी कृपा सागर और अकारण दयालु योगिराज श्री सद्गुरू देव जी महाराज ने श्रीमती कमला देवी की अकाल मृत्यु से किस प्रकार रक्षा की, इसी तथ्य को समझना एवं समझाना इस प्रसंग का मुख्य लक्ष्य है। श्रीमती कमला देवी हमारे आदरणीय गुरूभाई श्री मनोहर मास्टर की परम सुपात्र धर्मपत्नी है। श्री मनोहर मास्टर जी मिरजापुर जिला अन्तर्गत, बेदौली कलां ग्राम के मूल निवासी हैं तथा मिरजापुर जिले के ही टाउन हाल में प्राइमरी पाठशाला में प्रधानाध्यापक हैं। पूर्व जन्मों के पुण्यों के फलस्वरूप मास्टर साहब की बाल्यावस्था से ही ईश्वर के चरणों में अगाध श्रद्धा एवं प्रेम था। पढ़ाई के समय ही इन्हें एक माँ गायत्री के श्रेष्ठ उपासक से मिलने का सौभाग्य मिला, उसके साथ इनका अच्छा सत्संग चला एवं इस सत्संग का इनके मन पर इतना प्रभाव पड़ा कि यदि माँ गायत्री की कृपा हो जाय तो इस लोक या परलोक का कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जिसे सुगमता से पूर्ण न कर लिया जाय। इस प्रकार की भावना बनने पर आदरणीय मास्टर जी ने माँ गायत्री की विधिवत आरती पूजन एवं मंत्र जाप आरम्भ कर दिया। इनकी यह साधना लगातार कई वर्षों तक चली एवं उन्हें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कई आशीर्वाद प्राप्त हुए। उन्हीं ममतामयी माँ की महती कृपा के कारण इन्हें परम सिद्ध योगिराज, सद्गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के अभय चरण कमलों की छत्रछाया में योग दीक्षा ग्रहण करने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। परम आराध्यदेव श्री सद्गुरूदेव जी महाराज अपने मुखारबिन्दु से ये कहा करते थे कि यदि पति पत्नी में अगाध प्रेम है तो उनकी आध्यात्मिक साधना में यह उत्प्रेरक का कार्य करता है। यह रहस्य कसौटी पर इस प्रकार सत्यापित होता है कि मास्टर साहब जी ने तो श्री सद्गुरूदेव जी महाराज से योग दीक्षा ग्रहण की परन्तु उसके चौथे दिन योगेश्वर द्वय (आराध्यदेव श्री सद्गुरू देव जी महाराज एवं अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम योग योगेश्वर दादा गुरूदेव श्री रामलाल जी महाराज) के स्वरूप के सामने, पूजा गृह में बैठकर जब श्रीमती कमला देवी ने आँख बन्द कर चिन्तन करना आरम्भ किया तो उनके मुख से अनायास ही जोर-जोर से गुरूमंत्र उच्चारित होने लगा। इनके पतिदेव जो उपांशु विधि से गुरूमंत्र का जाप कर रहे थे एवं इनके करीब ही बैठे थे, उन्हें यह सुनकर महान आश्चर्य हुआ एवं मास्टर साहब झकझोर कर श्रीमती कमला देवी को सहजावस्था में लाये और प्रश्न किया कि यह मंत्र तुम्हें किसके द्वारा मिला है तो इनकी धर्मपत्नी ने बतलाया कि यह मंत्र हमें किसी ने नहीं दिया है, यह मंत्र तो अनायास ही हमारे मुख से पता नहीं कैसे निकल रहा है। ऐसी स्थिति विरले श्री सद्गुरू कृपा पात्र साधकों के घर देखने को मिलती है।

ईस्वी सन् दो हजार के ग्यारह बारह जून की रात्रि थी। उस समय त्रिस्तरीय पंचायत चुनाव के पदों के लिए सदस्यों का निर्वाचन इस जून माह में हो रहा था। ग्राम बेदौली कलां के ग्राम प्रधान पद का एक प्रत्याशी, मास्टर साहब से यह अनुरोध करने आया था कि आप अपना और अपने घर के

सदस्यों का वोट हमारे पक्ष में डलवाने की कृपा करें। मास्टर साहब जी उससे यह निवेदन कर रहे थे कि मेरी ड्यूटी तो चुनाव में मझवा ब्लाक में लगी है अतः मैं तो आप के पक्ष में मतदान नहीं कर सकूँगा, रहो घर के और सदस्यों को आप के पक्ष में मतदान करने की बात तो वह मैं कह दूँगा। प्रधान पद के प्रत्याशी की यह लालसा थी कि मास्टर साहब हमें विजयी होने का आशीर्वाद देने की कृपा करें। प्रत्याशी ने कई प्रकार से यह निवेदन मास्टर साहब से किया परन्तु उन्होंने कोई आश्वासन नहीं दिया। इन सब बातों के आदान-प्रदान में ग्यारह जून की रात्रि के बारह बज गये। गर्मी का मौसम था और वार्तालाप में काफी समय व्यतीत होता जा रहा था अतः श्रीमती कमला देवी मकान की छत पर प्राकृतिक हवा में आराम करने चली गयीं एवं उन्हें वहाँ नींद लग गयी। प्रधान पद के प्रत्याशी के चले जाने के बाद मास्टर साहब मकान के अन्दर आये एवं आवाज लगाये। श्रीमती कमला देवी उनकी आवाज सुनकर नीचे आयीं एवं फिर परिवार के सभी सदस्य अपने निर्धारित स्थान पर सोने गये।

दिनांक बारह जून दो हजार को प्रातः पौने चार बजे श्रीमती कमला देवी को ऐसा लगा कि उनकी दाहिनी बाँह में केहुनी के पास किसी जन्तु ने काट लिया। उन्होंने आवाज लगायी, मास्टर साहब जगे एवं उनके साथ ही थोड़ा आगे पीछे परिवार के सभी सदस्य जग गये। टार्च की रोशनी में जब देखा गया तो ऐसा लगा कि ब्लेड से किसी ने चीरा लगा दिया है। इसके बाद कौन जन्तु काटा है एवं कहाँ है, उसकी खोज शुरू हुई। करीब आधे घण्टे की खोज के बाद दिवाल एवं दरवाजे की बीच की जगह में एक सर्प दिखलायी दिया जिसे मार दिया गया। सर्प जब मारकर घर से बाहर निकाला गया तो वह करीब तीन फुट लम्बा, डेढ़ इंच व्यास का करैत सर्प था। उधर श्रीमती कमला देवी के शरीर में सांप का विष फैलना आरम्भ हो गया था। प्राथमिक उपचार में सर्प काटने वाली जगह से करीब दो इंच ऊपर कसकर बांध दिया गया था तथा काटने वाले स्थान पर ब्लेड से क्रास लगाकर कुछ खून निकाल दिया गया था जो बिल्कुल मटमैले रंग का था। इसके बाद मनोहर मास्टरजी मरे हुए करैत सर्प को एक झोले में रखकर अपनी मोटर साइकिल में लटकाये एवं अपनी पत्नी को बैठाकर जिला अस्पताल मीरजापुर पहुँच गये। समय करीब साढ़े पाँच बजे सुबह का था। उस समय ड्यूटी पर उपस्थित डाक्टर से उन्होंने पूरी घटना का वर्णन कर अपनी पत्नी का इलाज आरम्भ करने का निवेदन किया। डाक्टर ने प्रश्न किया कि सर्प लाये हो ? यदि हाँ तो दिखलाओ। इन्होंने सर्प को निकाल कर दिखलाया। मरा हुआ सर्प देखने के बाद डाक्टर ने अपना मुँह बनाते हुए कहा कि भाई साहब यह बड़ा ही विषैला करैत सर्प है एवं इसकी दवा इस समय उपलब्ध नहीं है। आप फौरन इन्हें लेकर जिला अस्पताल वाराणसी (कबीरचौरा) पहुँच जाय। आप जितनी जल्दी पहुँच सकें उतना ही अच्छा है। तत्काल पहुँच कर इलाज आरम्भ करा दीजिये। क्योंकि रोगी के लक्षण ठीक नहीं दिखायी दे रहे हैं। इतनी कार्यवाही होते-होते इनके सुपुत्र श्री नन्दकुमार एवं इनके नजदीकी श्री ऋषिकान्त श्रीवास्तव भी सदर अस्पताल पहुँच गये थे। एवं कृत कार्यवाही से अवगत हो गये थे। तय यह हुआ कि रेलवे स्टेशन मीरजापुर चलकर वहीं से टैक्सी कर लिया जाय एवं

उसी से सब लोग कबीरचौरा चलें। इनका मित्र श्रीवास्तव जो मेडिकल रिप्रेजेन्टेटिव का कार्य करता है उसने मास्टर साहब से पूछा कि आप के पास कितने पैसे हैं। इन्होंने उसे बतलाया कि एक हजार रुपया हमारे पास है। उसने कहा कि इतने रुपये से काम नहीं चलेगा, आप लोग तब तक स्टेशन पहुँच कर टैक्सी तय करिये, मैं भी पैसे का प्रबन्ध कर मात्र दस मिनट में पहुँच रहा हूँ। आदरणीय मास्टर साहब, उनकी पत्नी श्रीमती कमला देवी, एवं उनके सुपुत्र श्री नन्दकुमार स्टेशन पहुँच कर, अब तक टैक्सी तय कर ही रहे थे, श्रीवास्तव जी भी पैसा लेकर पहुँच गये। इसके पश्चात सभी लोग टैक्सी द्वारा बारह जून को प्रातः करीब आठ बजे कबीरचौरा अस्पताल वाराणसी पहुँच गये। करीब साढ़े आठ बजे इमरजेन्सी में दिखलाया गया, ड्यूटी पर उपस्थित डाक्टर ने श्रीमती कमला देवी को महिला वोर्ड के बेड न. ६ पर भरती कर इलाज करना आरम्भ किया। विष उतारने वाले दो इन्जेक्शन तत्काल दिये गये एवं ग्लूकोज में मिलाकर दवा चढ़ाना आरम्भ किया गया। इस समय तक विष उनके पूरे शरीर में फैल गया था एवं वह बेहोश थीं क्योंकि विष रोकने के लिए जो बंध बांधी गयी थी, उसे भरती करने के साथ ही डाक्टर ने खुलवा दिया था।

जिला अस्पताल वाराणसी में प्रातः साढ़े आठ बजे इलाज आरम्भ हुआ परन्तु रात के नौ बजे तक दवा का कोई प्रभाव नहीं दिखलायी दिया। श्रीमती कमला देवी मुर्दे की तरह अपने बेड पर कबीरचौरा अस्पताल में पड़ी थीं। रात्रि के दस बजे जब डाक्टर मरीज को देखने आये तो श्रीमती कमला देवी को देखने के बाद, उसके चेहरे पर निराशा के भाव स्पष्ट दिखलायी दे रहे थे। उसने दुखित मन से मनोहर मास्टरजी से कहा कि हमको जितना अच्छा से अच्छा उपचार करना था हमने कर लिया परन्तु मरीज पर दवा का रंच मात्र भी प्रभाव नहीं है। मेरी समझ से मरीज के बचने के चान्स अब बिल्कुल ही कम हैं। मेरी तरफ से आप पूरी तरह स्वतन्त्र हैं, चूँकि मरीज के जीवन मरण का प्रश्न है अतः आप को और कहीं भी दिखलाना हो तो दिखाकर इलाज करवा सकते हैं। इतना कहकर डाक्टर चले गये। उपरोक्त परिस्थिति में शायद ही कोई ऐसा प्राणी होगा जो महानतम कष्ट का अनुभव न करे।

महान कष्ट एवं मुसीबत के समय करूणा सागर की याद आ ही जाती है। यह श्री सद्गुरूदेव भगवान की अहैतुकी कृपा है जो उनके श्री चरणों में श्रद्धा एवं प्रेम रखने वाले साधकों को सहज ही सुलभ है। अतः श्री मनोहर मास्टर जी भी उन्हीं दयानिधान के कृपामय चरणों का स्मरण कर एक तरफ बैठ गये एवं मन ही मन आर्त प्रार्थना करने लगे कि प्रभो ! अब हमारी पत्नी को आप ही प्राणदान दे सकते हैं। अब आप से मेरी बारम्बार साष्टांग प्रणाम के साथ यही प्रार्थना है कि मेरी धर्मपत्नी की प्राण रक्षा करने की कृपा की जाय। अपनी यह प्रार्थना करने के बाद, ये ध्यान करना आरम्भ किये उन्हें श्री सद्गुरूदेव भगवान की यह स्पष्ट वाणी सुनायी दी कि लल्ला, इसे जहर का एक और इंजेक्शन लगवा दो, अवश्य अवश्य बच जायेगी। वे तत्काल ध्यान से उठे एवं नर्स के पास जाकर निवेदन किये कि जो जहर का दो इंजेक्शन आपने लगाया है वही एक इंजेक्शन आप और लगा दीजिये। नर्स ने कहा कि डाक्टर ने जो दवा लिखी है मैं वही दवा चलाऊँगी। इन्होंने फिर

निवेदन किया कि आपके सामने ही डाक्टर जवाब देकर गये हैं अगर आप इंजेक्शन नहीं लगायेंगी तो क्या इसे मरने से बचा लेंगी। उसने कहा कि नहीं मैं कैसे बचा सकती हूँ ? मास्टर साहब ने कहा कि यदि बिना जहर का एक और इंजेक्शन दिये भी यह मर ही जायेगी तो मैं इसका पति आप से निवेदन करता हूँ कि इसे जहर का एक और इंजेक्शन लगा दीजिये। नर्स तो राजी नहीं थी परन्तु उस वार्ड में मौजूद अनेकानेक रोगियों एवं उनकी देखभाल करने वालों के दबाव के चलते उसे झुकना पड़ा एवं उसने कहा कि ठीक है, आप इंजेक्शन मंगाइये मैं लगा देती हूँ परन्तु यदि मरीज मरता है तो मेरी जिम्मेदारी नहीं होगी। उसके इतना कहने पर मनोहर मास्टर ने विष का इंजेक्शन मंगाया एवं नर्स ने इंजेक्शन को उस बोतल की दवा में मिला दिया जो मरीज को सिरिन्ज के द्वारा चढ़ाया जा रहा था। इसके साथ ही बोतल से दवा चढ़ने की जो गति थी उसे बहुत ही कम कर दिया। रात के करीब बारह बज रहे थे, नर्स यह कार्य करके अपनी कुर्सी पर जाकर सो गयी। इस समय बोतल से दवा चढ़ने की गति तीन मिनट में एक बूंद थी। मास्टर साहब ने सोचा कि यदि इसी गति से दवा चढ़ती रही तो जहर की सुई का प्रभाव श्रीमती कमला देवी के शरीर में होने से पूर्व ही राम नाम सत्य हो जायेगा। अतः उन्होंने अपने सुपुत्र श्री नन्द कुमार से कहा कि इसकी गति काफी तेज कर दो जिससे जल्दी से दवा शरीर में प्रवेश कर जाय। उसने ऐसा ही किया एवं दवा तीव्र गति से चढ़ना आरम्भ हो गयी। इसी समय श्री गुरूदेव भगवान की कृपा से दो अपरिचीत महिलायें आयीं एवं उन सबों ने कहा कि ठंडे पानी से इनके सिर को खूब धोइये। दोनों महिलाओं ने स्वयं पानी लाला-कर करीब एक घण्टे तक लगातार सिर पर पानी गिरा कर धोया। साथ ही तब तक सिर धोते रहने की सलाह दी जब तक होश नहीं आ जाता। बोतल की दवा तेज गति से चढ़ने के कारण रिएक्शन हो गया था तथा श्रीमती कमला देवी के पूरे शरीर में लाल-लाल चकत्ते निकल आये थे। श्री मास्टर जी ने जब यह बात ड्यूटी पर तैनात नर्स को बतलायी तो उसने कहा कि बोतल की दवा हमने इस हिसाब से चढ़ाना आरम्भ किया था कि वह प्रातः आठ बजे तक चढ़ती परन्तु आपने मात्र तीन घण्टे में चढ़ा दिया, उसी का रिएक्शन है, आप ही जानिये, मैं नहीं जानती। इतना कहने के बाद नर्स गुस्से में आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गयी। इसके बाद श्री मास्टर जी ने अपने सुपुत्र नन्दकुमार से तत्काल रिएक्शन दूर करने वाला इंजेक्शन मंगवाया। उसके बाद वे नर्स से अनुरोध करने गये कि रिएक्शन वाला इंजेक्शन लगा दीजिये। नर्स पहले से ही नाराज थी एवं मास्टर साहब की उपरोक्त बात सुनकर गुस्से से तमतमा गयी। उसने डांटते हुए कहा कि एम.डी. डाक्टर बने हो, कभी जहर का इंजेक्शन लगवा रहे हो, कभी रिएक्शन का इंजेक्शन लगाने को कहते हो, चले जाओ यहाँ से, मैं इंजेक्शन नहीं लगाऊँगी उसके इतना कहने के बाद मास्टर साहब दुखित मन से अपने मरीज के पास आकर बैठ गये। करीब दस मिनट बाद वे फिर नर्स के पास गये एवं हाथ जोड़कर निवेदन किये कि बहन जी, मरीज का रिएक्शन बढ़ता जा रहा है कृपया चल कर इंजेक्शन लगाने की कृपा करें। नर्स यह कहकर इंजेक्शन लगाने के लिए चली कि इसके बाद कोई भी दवा अपने मन से मंगाये तो मैं तुम्हारे मरीज को उठवाकर अस्पताल से बाहर फेंकवा दूँगी। खैर इतना सब कहने के बाद नर्स ने

रिएक्शन वाला इंजेक्शन लगाया। दिन के करीब आठ बज रहे थे, अर्थात् मरीज को सर्प काटे लगभग सत्ताइस घण्टे हो गये थे, बराबर दवा चढ़ रही थी और मरीज का सिर पानी से धोया जा रहा था परन्तु कोई लाभ नहीं हो रहा था। यही क्रम दवाओं का दिन में भी चलता रहा एवं मास्टर साहब बराबर श्री प्रभु जी का चिन्तन कर रहे थे। तेरह जून को दिन में करीब दो बजे श्रीमती कमला देवी के शरीर में कुछ स्पन्दन हुआ। मास्टर साहब श्रीमती कमला देवी के कान के पास बोले कि क्या हाल है श्रीमती कमला देवी ने धीरे से कहा कि बोला नहीं जा रहा है, मुख में तथा पूरे शरीर में जाम के कारण लगता है कि काँटा बिछाया गया है, श्वाँस लेने में भी परेशानी होती है। मास्टर साहब दौड़े-दौड़े गये और डाक्टर को यह बात बतलाये। डाक्टर यह सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और मुस्कराते हुए बोला, "यू आर लकी, अब हम मरीज को बचा लेंगे, कल की तारीख में सर्प काटने के सात मरीज कबीरचौरा अस्पताल में आये थे, बाकी सभी मृत्यु को प्राप्त हो गये केवल आपका ही मरीज बचेगा।" फिर डाक्टर श्रीमती कमला देवी के पास गया, इस बार उनका गहन परीक्षण किया एवं दवा तथा सुई मँगाकर विधिवत इलाज शुरू किया। इस बार दवा जब शुरू हुई तो श्रीमती कमला देवी धीरे-धीरे होश में आती गयीं एवं चौदह जून को प्रातः नौ बजे तक रोगमुक्त हो गयी थी। डाक्टर ने पहले मूँग की खिचड़ी खिलाने की सलाह दी। इस प्रकार श्री प्रभु जी ने श्रीमती कमला देवी की अकाल मृत्यु से रक्षा की।

***

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिवः।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति।।
अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाजंयति समूलस्तु विनश्यति।।

(मनुस्मृति)

इस जीवन (संसार) में किया गया अधर्म (अशुभ कर्म) तत्काल फल नहीं देता, जैसे बोई हुई पृथ्वी तत्काल फल नहीं देती। वह कुकर्म क्रमशः पक कर कर्ता की जड़ों तक को काट डालता है। अधर्म करने वाला पहले तो बढ़ता है, फलता-फूलता व सम्पन्न होता है, नौकर-चाकर, धन-वैभव के साधनों से सम्पन्न होता है, अपने ईर्ष्यालु शत्रुओं व प्रतिद्वन्द्वियों को जीत भी लेता है, पर अन्ततः वह जड़ सहित नष्ट हो जाता है।

बिनु सतसंग विवेक न होई

अवनीश भटनागर, सहारनपुर

सतसंग शब्द का चिर परिचित अर्थ सर्वविदित है ही कि सत्य वस्तु का संग करना, सत्य वस्तु परमात्मा एवं उसका सच्चा नाम हो सकता है, और कोई वस्तु नहीं। बाकी सब नाशवान वस्तुयें हैं। उनके सत्य या उनके संग को सतसंग नहीं कहा जा सकता है। सतसंग के अन्तर्गत ईश्वर का संग या ईश्वर के साकार स्वरूप ब्रह्मवेत्ता सद्‌गुरू और उनके श्री मुख से प्रार्दुभूत दिव्यवाणी और उनका आज्ञापालन व उनकी सेवा। सिद्धपुरुषों की अनुग्रह दृष्टि एवं मुक्तिदाता ग्रन्थों व शक्ति भक्ति से भरे हुये सिद्ध पुरुषों के दिव्य चरित्रों आदि का चिन्तन मनन, गुरू मन्त्र एवं प्रणव आदि मन्त्रों के अनुष्ठान व अन्यान्य सत् प्रेरणादायी सभी साधन सतसंग का सही स्वरूप है जो उत्तम अलौकिक सतसंगामृत का दिव्य रसास्वादन कराते हैं। इसी को वास्तविक सतसंग कहा जा सकता है।

ऐसा सतसंग **"राम कृपा बिनु सुलभ न सोई"** अर्थात् बिना किसी ईश कृपा या सिद्धपुरुषों की दिव्य अन्तर्प्रेरणाओं के अभाव में नहीं हो सकता जो राम की कृपा यानि परम चैतन्य की कृपा से ही संभव हो पाता है। इसका यह अर्थ नहीं कि श्री रामजी के भक्त ही सतसंग लाभ ले सकते हैं। अन्य के भक्त नहीं। रामकृपा से आशय उसी सर्वशक्तिमान परमचेतन सत्ता की कृपा होना है। परम चेतन सत्ता जिसका प्रकाश श्रीराम, श्री कृष्ण, हंस, मत्स्य एवं शूकर आदि सब अवतारों के अन्दर विद्यमान है। सर्वशक्तिमान के किसी भी विग्रह का चिन्तन करना उसी परम सत्ता का चिन्तन ही है। ईश्वर के इन साकार विग्रहों का चिन्तन करते-करते थोड़ी देर भी व्यक्ति यदि ध्यानावस्था को प्राप्त हो जाये तो बस यही वास्तविक सतसंग है।

सतसंग का प्रभाव

फरवरी सन् १९९० में शिवरात्रि महापर्व के उपलक्ष में सद्‌गुरूदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी का योग प्रचार-प्रसार कार्यक्रम सहारनपुर में आयोजित किया गया था। इस कार्यक्रम के चलते अनेक अवसर ऐसे आये जब श्री करुणा निकेतन इस दीनदास पर बार-बार द्रवीभूत होते रहे और इसी बीच मुझ अधम दास को भजन सुनाने की आज्ञा श्री मुख द्वारा हुई, अब मुझे कोई गानावाना तो आता नहीं था पर मैंने आज्ञा का पालन तुरन्त किया। परम करुणावतार कुछ देने का मन पहले से ही शायद बना चुके थे सो भजन का बहाना बनाकर दे दिया। वह भजन सुनने के पश्चात अपने आसन पर से एकदम उठे और आकर सिर पर हाथ रखकर कुछ अमूल्य शब्द कहे और साथ ही एक महान कल्याणकारी आज्ञा दी **"लल्ला इसी प्रकार धूमधाम से सतसंग चलाओ, हमारा हार्दिक आशीर्वाद प्रतिक्षण तुम्हारे साथ है।"** हमारे और भी जितने गुरू भईया बहना को श्री गुरुदेवजी ने इस प्रकार की आज्ञायें दी देखने में यह बराबर आता है कि उनके जीवन में चमक पैदा हुई और वह

अन्य लोगों के सोये संस्कारों को जगाने का माध्यम बनें। और जो लोग ऐसे ही सतसंग का आडम्बर रचा कर दुकानदारी चलाते रहे हैं, उनमें यह बात देखने में नहीं आती। खैर मात्र कहने का अभिप्राय यही है कि उन सर्वशक्तिमान के श्रीमुख द्वारा दी गई आज्ञा से किसी कार्य को करना और अपनी मर्जी से किसी कार्य को करना दिव्यता व लौकिकता जितना भेद है। क्योंकि श्री सद्गुरुदेवजी द्वारा दी गई आज्ञा एवं वरदान में सत्यता, अलौकिकता, दिव्यता, सामर्थ्यता रहती है। सतसंग तो सन् १९९० से पहले भी हम लोग एवं हमसे पूर्व के गुरुभाई लोग श्री महाप्रभु के जमाने से ही करते आ रहे थे। परन्तु सन् १९९० से नवीन शक्तिसंचार प्राप्त होने के पश्चात श्री महाराजजी के शुभ एवं पवित्र हार्दिक संकल्प से नये-नये चमत्कार सतसंग में देखने में आने लगे जो विग्रह श्री महाप्रभुजी एवं श्री महाराजजी के सतसंग के समय विराजमान किये जाते थे उनमें प्रतिक्रियायें होती थी। सतसंग जब तीव्र गति से चलता होता तो इसी मध्य इन स्वरूपों में दिव्य तेज का आभास अक्सर होता था। कभी दिव्यगंध सतसंग में महसूस होने लगती पहनाये गये पुष्पों के हार स्वरूप पर से सरक सरक कर टूट-टूट कर बिखरने लगते थे। दोनों महाप्रभुओं के स्वरूप हँसते से प्रतीत होते थे **"बसी भाल मूरति मुसकानी"** वाली उक्ति चरितार्थ हो जाती। भक्तों में त्राटक एवं ध्यान अवस्था के लक्षण आम बात थी। आनन्द की लहरें मन को प्रसन्न कर देती थी जिससे मुँह पर मुस्कान एवं शरीर में रोमान्च हो जाता। सतसंग के संपर्क में आने वाले दीक्षित एवं गैर दीक्षित लोगों के मन की इच्छायें अपने आप पूरी होने लगी। दादागुरू एवं श्री महाराजजी के दर्शन स्वप्न में होने लगे और उनके आदेश भी प्राप्त होने लगे। रोग एवं शोक का निवारण स्वतः ही होने लगा और लोगों में योग साधनों के प्रति अपने आप जिज्ञासा बढ़ने लगी। सतसंग का समय दो घंटे होने पर भी समय का बंधन तोड़कर चार-पाँच घंटे में मुश्किल से सम्पन्न करना पड़ता।

सतसंग से प्रभुजी की पहिचान

सतसंग का दिव्य प्रभाव जो आपको ऊपर बताया जा चुका है। यदि निश्छल भावना से सतसंग का लाभ लिया जाये तो श्री सर्वशक्तिमान के अभय चरण की प्राप्ति संभव जान पड़ती है। सतसंग के बाह्य रूप को देखकर यह नहीं जान पाते हैं कि यह दाढ़ी जटायें एवं सफेद कपड़ों में कौन सामर्थ्यवान प्रभुता सम्पन्न महान व्यक्तित्व है। श्री प्रभुजी के शुद्ध स्वरूप का आभास उनकी परम कृपा से उनके प्रेरणादायक दिव्य चरित्रों को यदि सुनने का शुभ अवसर प्राप्त हो जाये तो जिज्ञासु की आस्था थोड़े समय में ही बढ़कर श्री प्रभुजी का संस्कारी बना देती है। गीता में श्री कृष्ण कहते हैं श्रद्धावान लभते ज्ञानं और श्री प्रभुजी के श्रीचरणों में संस्कारों का ही सारा खेल है। यह आप विज्ञजनों को विदित है ही।

***

मानव की महत्वपूर्ण प्रोस्टेट ग्रन्थि उसके रोग तथा निदान

सत्यनारायण 'बन्धु' दिल्ली

प्रोस्टेट ग्रन्थि–हमारा शरीर ईश्वर की एक महत्वपूर्ण रचना है। इस शरीर की रचना में जगह–जगह पर विभिन्न ग्रन्थियों तथा नाड़ियों का एक जाल सा बिछा हुआ है, जहाँ ग्रन्थियों की संख्या लगभग १०० तथा नाड़ियों की संख्या ७२,००० के करीब है। आयुर्वेदिक ही नहीं, अपितु बौद्धिक और मौलिक दृष्टि से भी ग्रन्थियों को मर्म और चैतन्य स्थान माना गया है। शरीर विज्ञान के अध्ययन से प्राप्त जानकारी के अनुसार १०० से भी अधिक बताई गई ग्रन्थियों की गिनती करना अब तक भी संभव नहीं हो पाया है। फिर भी योग साधना, शरीर साधना (स्वस्थ शरीर की ओर) के लिए अधिक महत्व रखने वाली मुख्य ग्रन्थियाँ इस प्रकार बताई जाती हैं– १. पीनियल ग्रन्थि २. पिट्यूटरी ग्रन्थि ३. थाइराइड ग्रन्थि ४. थाइमस ग्रन्थि ५क. एड्रीनल ग्रन्थि ५ख. पैंक्रियाज ग्रन्थि ६. प्रजनन ग्रन्थि ७. गोनाड्स–प्रोस्टेट ग्रन्थि

प्रोस्टेट ग्रन्थि:–मानव शरीर के लिए यह विचित्र यंत्र प्रकृति की एक महत्वपूर्ण देन है। ग्रन्थि समूह में प्रोस्टेट का स्थान गुदा मूल से कोई लगभग २ अंगुल ऊपर माना जाता है और आकृति कुछ चौकोर सी मानी जाती है।

इसका गुण गंध, ज्ञानेन्द्रिय नासिका और कर्मेन्द्रिय गुदा है। एक डिब्बी जैसे आकार में एक विचित्र लोथड़े की तरह पेट के निचले भाग में मूत्राशय के मुँह पर ही स्थित है। समस्त ऊर्जा तथा शक्ति का यही केन्द्र स्थल माना जाता है। प्राणियों में सबसे अधिक शक्तिशाली स्थान और वहाँ स्थित ग्रन्थि प्रोस्टेट ग्रन्थि ही है।

भारतवर्ष में त्रिवेणी का विशेष महत्व है, जहाँ तीन महत्वपूर्ण नदियों–गंगा, यमुना तथा सरस्वती का मिलन होता है। जहाँ मात्र स्नान करने से ही मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। इसी तरह प्रोस्टेट ग्रन्थि और उसके आस पास के स्थान का भी अपना ही महत्व है, जो पंचवटी के समान है।

१. प्रोस्टेट ग्रन्थि २. मूल बन्ध ३. मूलाधार चक्र ४. सुषुम्ना नाड़ी ५. कुण्डलिनी

कितना विचित्र संयोग और संगम है पाँच विशेष महाशक्तियों का मानव शरीर में। इन पाँच शक्तियों में से किसी एक शक्ति की भी साधना द्वारा मनुष्य कितने ही चमत्कार करता आया है, यह किसी से छुपा हुआ नहीं है। इस स्थान और इस स्थान में वास करने वाली जो पाँचों शक्तियों के महत्व को जानकर उनकी साधना करेगा वह निश्चित ही महामानव ही नहीं, महादेव होगा। ऐसे गुणाधारक के पृथ्वी पाँव चूमती है और उसके ऊपर के लोकों में विराजमान देव उस पर फूल बरसाते हैं। इन सबका आधार मूलाधार जितना नियन्त्रण में होगा, सधा होगा, यह मानव उतना ही स्वस्थ और देवत्व की ओर बढ़ने में सक्षम होगा।

अधिक विस्तार में न पड़कर हम अपना ध्यान मात्र 'प्रोस्टेट ग्रन्थि' पर ही केन्द्रित करेंगे। मानव जीवन में इस ग्रन्थि का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसमें विकार (किसी कारण) आ जाने पर मनुष्य की विचित्र स्थिति हो जाती है। ज्यों–ज्यों मनुष्य की आयु बढ़ती है, अण्डकोशीय हार्मोन के स्रवण में कमी होना आरम्भ हो जाता है और इस ग्रन्थि का आकार सिकुड़ने की बजाय धीरे–धीरे कुछ फूलना आरम्भ हो जाता है। जब मनुष्य ५० वर्ष की आयु में पहुँचता है तब इसके फूलने के चान्स मात्र २० प्रतिशत होते हैं। ७० वर्ष की आयु पर पहुँचने तक ५० प्रतिशत और बढ़ते–बढ़ते ८० वर्ष की आयु में प्रवेश करने तक इसके फूलने के अवसर भी ८० प्रतिशत तक पहुँच जाते हैं।

प्रोस्टेट ग्रन्थि के फूलने तथा आकार के बढ़ने का सम्बन्ध संभवतः यौन हार्मोन से होता है अथवा इससे सम्बन्धित किसी अन्य विकार के घटित होने से। इस ग्रन्थि का बढ़ जाना कोई विशेष चिन्ता का विषय नहीं है, जब तक कि यह किसी कारणवश इतना न बढ़ जाए कि मूत्राशय ही सिकुड़ जाये और बार–बार मूत्र आए अथवा ऐसी मानसिकता बनी रहे। ऐसा होने से कुछ भी घट सकता है। अब यह स्थिति

गंभीर बीमारी का रूप भी धारण कर सकती है-

क. प्रोस्टेट ग्रन्थि के बढ़ जाने से मूत्र का बहाव रुक सकता (जाता) है।

ख. किसी आंशिक रुकावट के कारण मूत्र वहीं मूत्राशय में ही रुक-रुक कर वापस भी आ जाता हो, फलतः वहाँ एक तालाब सा बन जाए और अनेक प्रकार के कीटाणु प्रहार के कारण बन जायें और रोग एक गम्भीर अवस्था को प्राप्त हो जाए। स्थिति अधिक बिगड़ने पर ग्रन्थि का आकार बेर की गुठलियों से बढ़कर सेब के आकार तक पहुँच जाता है। वयस्क पुरुष में प्रोस्टेट ग्लैंड लगभग २० ग्राम की होती है। ४०-४५ की उम्र तक उसका आकार वैसा ही बना रहता है। ७० वर्ष की आयु होने तक लगभग ९० प्रतिशत पुरुषों की ग्रन्थि बढ़ चुकी होती है। परन्तु किसी में यह वृद्धि इतनी नहीं होती कि उसे शल्य चिकित्सा का सहारा लेना पड़े।

प्रोस्टेट ग्रन्थि के बढ़ने के विशेष लक्षण:-

१. मूत्राशय की रुकावट। २. मूत्राशय पेशी में पैदा हुए असंतुलन के कारण मूत्र मार्ग का रास्ता रुकने से परेशानियाँ ३. मूत्र की धार कमजोर हो जाती है। ४. मूत्र आने में पहले से अधिक समय लगता है। ५. अंत में धार बन्धी रहती ही नहीं। पेशाब पैर पर गिरने लगता है। ६. रात में कई बार मूत्र त्याग के लिए उठना और रुकना पड़ता है। ७. मूत्राशय के अति संवेदनशील हो जाने से कई बार मूत्र त्याग का वेग इतना अधिक हो जाता है कि उसे वश में करना कठिन हो जाता है।

प्रोस्टेट ग्रन्थि में विकार आने के विभिन्न कारण:-

१. जीवन संयम का न होना। देर से सोना-देर से उठना और सोते समय तक खाते ही रहना। फलतः पाचन क्रिया का बिगड़ जाना। कब्ज अनगिनत बीमारियों की जड़ है।

२. शराब का शौक फरमाना।

३. तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, गाँजा इत्यादि का सेवन करना।

४. तली भुनी चीजों का प्रयोग अधिक करना और समय कुसमय पर भोजन करना।

५. चिन्तित रहना और क्रोध में आ जाना।

६. मलेर-जिसके प्रति हम लापरवाह हैं, किसी भी बीमारी को हवा दे सकता है।

७. इस रोग का कारण कई बार मानसिक तनाव भी हो जाता है। नवीनतम वैज्ञानिक खोजों ने यह माना है कि रोगों की जड़ मनोविकारों में है।

मानसिक असंतुलन भी चित्र-विचित्र अखंड आकार-प्रकार वाली बीमारियों का प्रमुख कारण बन जाता है। कई बार मानसिक तनाव व विक्षोभ भी ऐसे रोगों के मूल कारण बन जाते हैं। यह तनाव जिस भी अंग अवयव को कमजोर पाता है, उसी के ऊपर अपना अधिकार जमा लेता है। कुछ तो गोनाडस (प्रोस्टेट ग्रन्थि) ५० वर्ष की आयु के पश्चात स्वाभाविक तौर पर कमजोर होने लगती है। फिर तनाव जैसे विकार का जरा सा झटका भी इसको प्रभावित किए बिना नहीं रहता। उत्तेजित तनावों की भांति हीनता, दीनता, भीरुता, आशंका आदि जो इन आम विक्षोभ के बाद अपना प्रभाव डालते ही रहते हैं, जिनका प्रभाव इस ग्रन्थि विशेष पर अवश्य पड़ता है।

इसलिए प्रत्येक परिस्थिति में तनाव मुक्त रहना और जीने की तनाव मुक्त कला को खोजना भी एक प्रभावी उपचार का कार्य करते हैं।

वैसे तो परमात्मा ने हमारे (मानव) शरीर में सभी ग्रन्थियों का समावेश हमारे सुचारू रूप से जीवन बिताने और उसका उद्धार करने तक के लिए किया है। परन्तु ऊपर दिए गए विवरण के अनुसार हमारी समझ में आता है कि सम्पूर्ण मानव जाति का अस्तित्व इस प्रोस्टेट ग्रन्थि पर ही टिका हुआ है। यदि आपकी प्रोस्टेट ग्रन्थि स्वस्थ है तो ही आपका जीवन सुखमय है। प्रोस्टेट ग्रन्थि का विकार मनुष्य के जीवन को दूभर बना सकता है।

मानव की यह प्रकृति है कि वह मरना नहीं चाहता और जीना चाहता है तो उसकी आयु ९०-१०० वर्ष या उससे भी अधिक जा सकती है और यह भी आपने देख और पढ़ लिया कि ५०-५५-६०-६५ अथवा ७०-८० की उमर पार करते-करते ९० प्रतिशत से भी अधिक मनुष्यों की इस ग्रन्थि में विकार आ ही जाता है और विकार आने से जीना दूभर हो सकता है।

अभी तक किसी भी मेडिकल सिस्टम में कोई भी ऐसी दवाई सामने नहीं आई कि वह इस वेदना से पूर्णतया छुटकारा दिला सके। अधिकतर हमारे माननीय चिकित्सक शल्य चिकित्सा करवाने के लिए सलाह देते हैं। देश-विदेश में अभी तक जो दवाईयाँ कुछ कारगर साबित हुई हैं, उनका सहारा भी लिया जा सकता है।

आपरेशन की विधियाँ

१. बहुत पुरानी आपरेशन पद्धति, जिसमें पेट के निचले भाग को खोलकर मूत्राशय के रास्ते प्रोस्टेट ग्लैंड तक पहुँचा जाता है और उसे निकाल दिया जाता है।

२. पेट का चीड़ फाड़ किए बिना पेशाब की नली के रास्ते ट्यूबनुमा उपकरण डालकर भीतर ही भीतर से प्रोस्टेट ग्लैंड को काट दिया जाता है। कई बार तो ग्रन्थि शूल इतनी तीव्र हो जाता है कि यह फैसला एकदम लेना ही पड़ता है।

३. अभी लगभग २-३ वर्ष पूर्व से लेज़र आधारित तकनीक का भी विकास हुआ है। इस तकनीक लेजर कर्जा की सहायता से प्रोस्टेट ग्रन्थि के सभी अवरोधक ऊतकों को बाधित कर दिया जाता है, जिससे मूत्र नली की रुकावट दूर हो जाती है।

अब ये परिस्थितियाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न को जन्म देती हैं कि एक ज्ञानी मनुष्य, विज्ञान की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ स्वस्थ दीर्घ आयु को कैसे प्राप्त कर सकता है ? इस प्रोस्टेट ग्रन्थि की प्रदाह रूपी अष्ट ६ गुलु की बेड़ी से कैसे बचा रहा जा सकता है।

इसी तरह इस रोग की रोकथाम अथवा इसके पैदा ही न होने के लिए भी उपाय ढूंढने चाहिये। इसके विकारों की रोकथाम के लिए सर्वोत्तम उपाय नियमित रूप से योगाभ्यास भी है, जिसका प्रतिपादन कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी योगी महायोगी करते रहे हैं।

विषय भ्रम न हो जाए, हम प्रोस्टेट ग्रन्थि से संबंधित इसके विकारों से बचने के कुछ विशेष क्रियाओं का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं-

१. अधिक से अधिक पानी का प्रयोग किया जाए। कम से कम १० से १२ गिलास पानी पीना भी इस बीमारी से बचने का रास्ता है।

२. चिन्ता मुक्त जीवन पद्धति ही स्वस्थ जीवन का आधार है। इस पद्धति से पहले तो यह रोग होगा ही नहीं, यदि हो गया तो आगे नहीं बढ़ेगा।

३. सदैव प्रसन्न रहना अपने लिए वरदान और दूसरों के लिए महादान है। यदि आप शुद्धात्मा में प्रसन्न होकर किसी से राम-राम भी कर लेते हैं तो आजकल के इस तनावपूर्ण वातावरण में एक बहुत बड़ा उपकार है।

४. मत्सर मनुष्य को अंदर ही अंदर खाता है। यह यदि मुक्त हृदय से देखें तो सभी प्रकार की श्रेणियों में उसी अनुपात में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

५. नशीले पदार्थों के सेवन से सदा दूर रहें।

६. तले हुए भोजन इत्यादि से सदैव दूर रहें।

७. कब्ज से सदा बचे रहें। उसके लिए चोकर समेत और चना-जौ मिले आटे की रोटियों का प्रयोग करें।

८. क्रोध से बचें और सदैव मन, कर्म तथा वचन से प्रसन्न रहें। सदैव बालवत् स्वभाव रखें।

९. सम्भोग के बाद मूत्रत्याग करना न भूलें। उत्तेजना से बचें। संयमित जीवन यापन करें। मूत्रत्याग रोक-रोक कर करें तथा गुदा को बार-बार खोलें और सिकोड़ें।

१०. यौगिक क्रियाएँ एवं आसन नियमित रूप से करते रहें।

इनके बाद इस बीमारी में योग का सहारा लेने से पूर्व अष्टांग योग का अवश्य ध्यान करना चाहिए, उससे ही आपकी यौगिक क्रियाएँ सफल होंगी। योग में कुछ क्रियाओं विशेषकर शुद्धि प्रक्रियाएँ तथा शुद्धिकरण आसन व प्राणायाम **'एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायाम् परं तपः'** हैं जिनके विधिपूर्वक अभ्यास से प्रोस्टेट ग्रन्थि को स्वस्थ रखने में सहायता मिल सकती है।

आसन–

१. वज्रासन–बहुत अधिक सैर करने से जो लाभ शरीर को मिलते हैं, वही लाभ इस आसन में ५-७ मिनट बैठने से ही मिल जाते हैं।

२. उष्ट्रासन–इस आसन के करने से प्रोस्टेट ग्रन्थि पर विशेष अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

३. गोरक्षासन–संत गोरखनाथ इस आसन में स्थित होकर योग साधना किया करते थे। वीर्य नियन्त्रण करने वाले सभी आसनों में यह सर्वोत्तम है। इस आसन से शुक्र ग्रन्थियाँ पूर्णतया: प्रभाव में आती हैं और पौरुष ग्रन्थि प्रोस्टेट को शक्ति देने से मूत्र दोष दूर हो जाते हैं।

४. पवन मुक्तासन ५. भस्त्रिका ६. सर्वांगासन ७. पादान्गुष्ठासन ८. सूर्य नमस्कार ९. अर्द्ध मत्स्येन्द्र आसन, पश्चिमोत्तान, गरुड़ आसन, कूर्मासन तथा विपरीत करणी मुद्रा एवं नौली क्रिया इस विकार में उपयोगी है।

प्राणायाम

रोगों की उत्पत्ति शरीर से कम और मन से अधिक होती है। कई बार पाप ग्रह की चाल भी रोग की उत्पत्ति का कारण बन जाती है। रोगों के निवारण में दवाईयों से पूर्व कुछ प्राकृतिक यम-नियमों से भी बहुत बड़ा लाभ होता हुआ देखा गया है।

''आसनों से शारीरिक तथा मानसिक रोग और प्राणायाम से पाप नष्ट हो जाते हैं।''

'गोरक्ष संहिता' के दूसरे शतक में कहा भी गया है-''आसनेन रूजो हन्ती, प्राणायामेन पातकम''।

प्राणायाम–साधक (रोगी) का पद्मासन में बैठकर इड़ा (चन्द्र नाड़ी) से स्वांस को भीतर लेना पूरक कहलाता है। प्राणों को भीतर ही रोकना 'कुम्भक' कहलाता है। इसके बाद 'पिंगला' (सूर्य नाड़ी) से सांस को बाहर निकालना चाहिए। इस क्रिया को रेचक कहते हैं।

प्राणायाम से पूर्ण लाभ, सुख और आनन्द की प्राप्ति के लिए प्राणायाम करते समय चन्द्रमा का ध्यान करना चाहिए।

इसी तरह से क्रिया को बदलकर सूर्य नाड़ी-पिंगला से सांस लेकर भीतर रोककर (कुम्भक) सूर्य मण्डल का ध्यान करना चाहिए।

इस प्रकार के अभ्यास से इड़ा-पिंगल तो शुद्ध और स्वस्थ हो ही जाती है, सुषुम्ना भी गतिशील हो जाती है।

प्राणायाम के अभ्यास के फलस्वरूप तीनों महत्वपूर्ण नाड़ियों के शुद्ध तथा स्वस्थ होने पर साधक परमात्मा के चिन्तन में लीन होकर आनन्द को प्राप्त होता है।

ऐसा आनन्द शारीरिक, मानसिक तथा अन्य पूर्व जन्य पाप जनित संचित कर्मों से उत्पन्न रोगों को भी नष्ट कर देता है, जिसमें प्रोस्टेट ग्रन्थि प्रदाह (पीड़ा) भी स्वयम् ठीक हो जाती है।

महायोगी गोरखनाथ जी ने 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' के दूसरे उपदेश में कहा भी है– प्राणायाम इति..... ...प्राणस्य स्थिरता'

प्राणायाम करने से प्राण स्थिर होते हैं, प्राणों के स्थिर होने से जीवन में दिव्यता आती है। जीवन में दिव्यता आने से सभी रोगों का ही नहीं अपितु सभी प्रकार के पूर्वजन्म संचित पापों का भी नाश हो जाता

है।

इसलिए प्रोस्टेट के रोगी को नित्य प्राणायाम के अभ्यास से विशेष लाभ प्राप्त करते देखा गया है।

बन्धों का महत्व और प्रकार

मूलबन्ध :- मूलबन्ध में सीधे बैठकर बायें पैर की ऐड़ी को गुदा मार्ग पर कसकर लगाएं (दबाएँ) और दायें पैर की ऐड़ी को ऊपर के भाग में सटायें। गुदा को ऊपर खींचें और कुम्भक करें।

मूलबंध में गुदा और मूत्रनली को ऊपर की ओर खींचें। गुदा को ऐसे सिकोड़ें जैसे घोड़ा लीद करते समय सिकोड़ता है। इससे प्रोस्टेट ग्लैंड को शक्ति मिलती है और यह क्रिया यौवन शक्ति की भी दाता है। इस बन्ध का एक विशेष लाभ यह भी है कि इस क्रिया को नियमित रूप से करने वाले को "पाइल्स" की बीमारी नहीं होती और हो गई हो तो यह सबसे प्रभावी निदान है।

प्रोस्टेट ग्रन्थि के लिए मूलबन्ध ही नहीं उड्डयन और जलन्धर बन्द भी बहुत काम की क्रियाएँ हैं। जैसे ८०-९० वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते प्रोस्टेट ग्रन्थि में भी ८० प्रतिशत तक विकार आ जाता है। अर्थात् इस ग्रन्थि की शक्ति क्षीण होने लगती है। मूलबंध के नियमित अभ्यास से किसी भी आयु तक प्रोस्टेट ग्रन्थि स्वस्थ और शक्तिशाली बनी रहती है।

शरीर के अन्य अंगों से भी यौवन स्फुरित होता रहता है। बुढ़ापा रुक जाता है, वीर्य दोष नहीं रहता है, मूत्र विकार नहीं होते।

मूलबन्ध मूलाधार चक्र, कुण्डलिनी, प्रोस्टेट ग्रन्थि तथा सुषुम्ना नाड़ी का जो शरीर का महत्वपूर्ण स्थान है, उसे सुरक्षित रखकर पूरे शरीर की रक्षा करता है।

इसके साथ उड्यानबन्ध और जलन्धर बन्ध का अभ्यास भी करना चाहिए। इनसे आयु का क्षय रुक जाता है, शरीर का रस रक्त उचित मात्रा में बनता और बढ़ता है। जलन्धर बन्ध १६ नदियों का आधार है, यहाँ से देवता भी अमृतपान करते हैं। इससे अमृत की वर्षा और रक्षा होती है। कुण्डलिनी भी आज्ञा चक्र की ओर गतिशील हो जाती है।

आसन और प्राणायाम के साथ-साथ इसमें (१) श्वसन प्रक्रिया का भी विशेष महत्व है। दिन में ४-५ बार श्वांस-प्रश्वांस का नियमपूर्वक अभ्यास करें। (२) ओम का उच्चारण करें। ओंकारनाद का भी प्रोस्टाईटिस में अपना ही महत्व है।

ओंकारनाद का अभ्यास कम से कम १०-१२ मिनट तक अवश्य करना चाहिए। ओंकारनाद के बाद कुछ समय तक शान्त बैठकर उसका मनन करना चाहिए। उसके पश्चात् मूलाधार चक्र के स्थान के पास पेडू पर दोनों हथेलियों से हल्की-हल्की मालिश करनी चाहिए। इससे प्रोस्टेट की बीमारी को ठीक करने में आशातीत लाभ होता है।

'ओंकारनाद' के कम्पन मेरुदण्ड में (मूलाधार से प्रोस्टेट ग्रन्थि) से सहस्रार तक होते रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप प्रोस्टेट ग्लैंड में विशेष लाभ होता है।

एक प्रसिद्ध योगाचार्य ने तो यहाँ तक कहा है कि प्रोस्टेट ही नहीं ओंकारनाद के विधिपूर्वक निरन्तर अभ्यास से कैन्सर जैसे असाध्य रोग से भी छुटकारा सम्भव है।

आज के इस प्रगतिशील युग में किसी बीमारी विशेष के लिए भिन्न-भिन्न अन्य उपचारों के प्रति भी आँखें नहीं मूंदी जा सकती। होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक, एलोपैथिक इत्यादि पद्धतियों में कुछ औषधियाँ भी बाजार में उपलब्ध हैं, उनकी सहायता भी ली जा सकती है।

अन्ततः यह कहने में संकोच नहीं करना चाहिए कि यह बीमारी भी समय रहते न संभाली जाये तो उग्र रूप धारण कर जान लेवा सिद्ध हो जाती है, इसलिए इसके बुरे परिणामों से बचने के लिए इस बीमारी के होने के कारणों के प्रति सतर्क रहना चाहिए।

सावधानी मनुष्य को बड़ी-बड़ी दुर्घटनाओं से बचा देती है।

***

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, संवाई (आगरा)

सिद्धयोग (मासिक) के आय-व्यय का वार्षिक विवरण

(अप्रैल २००१ से मार्च २००२ तक)

आय			व्यय		
विवरण	रुपये	पैसे	विवरण	रुपये	पैसे
१. नगद जमा राशि कार्यालय में ३१ मार्च २००२ तक	३६००	००	१. प्रिंटिंग प्रेस भुगतान छपाई व कागज आदि	७७,६००	००
२. ग्राहक शुल्क			२. डाक टिकिट	४५८०	००
(अ) वार्षिक	६८७१८	००			
(ब) आजीवन	१६१५०	००	३. कार्यालय खर्च स्टेशनरी, गोंद, लिफाफा आदि	५००	००
३. सहयोग राशि					
कृष्ण शर्मा, नूरी गेट, आगरा	१००	००			
अनिरुद्ध प्रधान, गाजीपुर	२०००	००	४. रिक्शा भाड़ा आगरा प्रेस जाना आदि	३००	००
परशुराम	११००	००			
मोहरसिंह, झरिया	२००	००			
महेश गोयल, मुरार, ग्वालियर	१९००	००	५. बाइंडिंग १५ सेट (वर्ष २००१ से २००२)	२२५	००
श्रीमती प्रभा अग्रवाल, ग्वालियर	५०१	००			
			शुद्ध लाभ	१३२६४	००
	९६४६९	००		९६४६९	००

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री ....

....

....

त्वं भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम् । त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम् ।।
त्वं गतिः सर्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायणम् । अनावृतार्गलद्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षताम् ।।
त्वया संधार्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाश्यते । त्वया पवित्रीक्रियते निर्व्याजं पाल्यते त्वया ।।

वनपर्व 3/36-38

अर्थात् - हे सूर्यदेव ! आप सम्पूर्ण जगत् के नेत्र तथा समस्त प्राणियों के आत्मा हैं । आप ही सब जीवों के उत्पत्ति स्थान और कर्मानुष्ठान में लगे हुए पुरुषों के सदाचार हैं । सम्पूर्ण सांख्ययोगियों के प्राप्तव्य स्थान आप ही हैं । आप ही सब कर्मयोगियों के आश्रय हैं । आप ही मोक्ष के उन्मुक्तद्वार हैं और आपही मुमुक्षुओंकी गति हैं । आपही सम्पूर्ण जगत् को धारण करते हैं। आपसे ही यह लोक प्रकाशित होता है । आपही इसे पवित्र करते हैं और आपके ही द्वारा निःस्वार्थ भावसे उसका पालन होता है ।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई (एलादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326
सम्पादक–आचार्य ब्र० रामलाल शर्मा